धान के खेत

कुरुक्षेत्र

सामुदायिक विकास-योजना प्रशासन का मासिक मुखपत्र

वर्ष १] जुलाई १९५६ [अंक ९

विषय-सूची

आवरण चित्र [कलाकार : आर० शारंगन्]		
सफलता का रहस्य ! [व्यंग्य-चित्र]	सैमुअल	२
ज़मीन में पानी की खोज	सूर्यनारायण व्यास	३
गाँवों में प्रगति	डी० आर० मन्केकर	६
हृदय-परिवर्तन [कहानी]	कृष्णवल्लभ शर्मा	१०
भारत में बुनियादी शिक्षा	राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद	१२
उद्बोधन [कविता]	रामरत्न बडौला	१४
चित्रावली	...	१५-१८
एक आदिमजाति की कहानी	मुकुल गुप्त	१९
४३ लाख लोगों द्वारा श्रमदान	...	२२
जादुई छड़ी	आर० पी० सिन्हा	२५
राजस्थान की एक प्रेम-गाथा	...	२७
अधिक से अधिक जोत कितनी हो ?	...	२९
प्रगति के पथ पर	...	३१

सम्पादक :

केशवगोपाल निगम

[सहकारी सम्पादक, प्रकाशन विभाग]

उप-सम्पादक : *मनोहर जुनेजा*

मुख्य कार्यालय
ओल्ड सेक्रेटेरिएट,
दिल्ली—८

वार्षिक चन्दा २।।)
एक प्रति का मूल्य ।)

विज्ञापन के लिए
बिज़नेस मैनेजर, पब्लिकेशन्स डिवीज़न
दिल्ली—८ को लिखें

सफलता का रहस्य !

कार्यक्रम से पहले

कार्यक्रम का श्रीगणेश

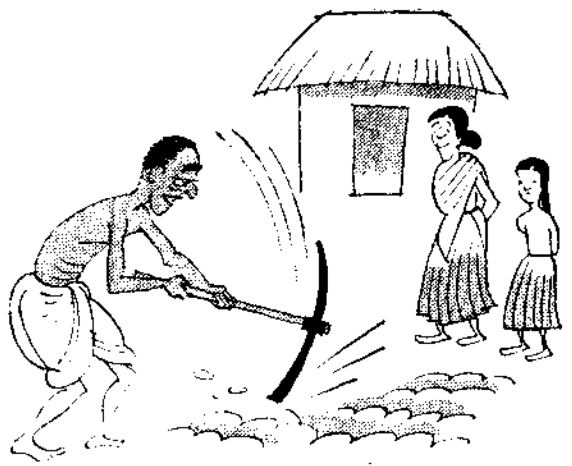

आत्म-सहायता

मेहनत का फल

तुरन्त बिक्री

क्रय-शक्ति

ज़मीन में पानी की खोज

सूर्यनारायण व्यास

कृषि-प्रधान भारतवर्ष में ग्रामों की संख्या विशेष है। सौभाग्य से इन ग्रामों की भूमि उर्वर एवं शस्य-श्यामल है। अन्न और जल की दृष्टि से ग्राम-भूमि समृद्ध है। भारत के विभाजन होने के पश्चात् अवश्य ही कुछ काल पर्यन्त धान्य की कमी और कठिनाई का सामना करना पड़ा है परन्तु दूरदर्शी शासकों की कार्य-कुशलता और कृषकों को श्रम-एवं उद्यमशीलता के कारण इस आकस्मिक कठिनाई पर भी विजय प्राप्त कर ली गई है। आज देश अन्न की दृष्टि से आत्म-निर्भर बन गया है और जल-सिंचन की सुविधा के लिए जिस प्रकार देश के विभिन्न भागों में बड़ी-बड़ी नहरें लाने, बाँध बाँधने, विद्युत उत्पादन करने की करोड़ों की धन-राशि व्यय कर सुविधाएँ सम्पादित की जा रही हैं, वे कुछ ही वर्षों में हमारे देश को ही नहीं, दूसरों को भी विपुल अन्न सम्पन्न बनाने में सहायक होंगी। जहाँ जल की सुविधाएँ सरल-साध्य नहीं हैं, वहाँ भी जलाशय, नलकूप आदि का निरन्तर निर्माण कार्य जारी है। ज़मीन में जल की शिराएँ सर्वत्र विद्यमान हैं। इन शिराओं के स्रोतों को प्राप्त कर लेना और उनसे जल प्राप्त कर लेना अवश्य ही साधारण समझ का काम नहीं है। भूगर्भ-शास्त्र के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा ही भूगर्भ की जल-शिराओं की गहराई, और स्तर का पता प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न भू-भागों में प्रवाहित होने वाली जल-शिराएँ, वहाँ की भू-स्थिति और वातावरण के अनुसार निकट, या गहराई में रहती हैं। उनके जान लेने पर जल स्रोतों का सहज पा लेना असम्भव नहीं होता। पता नहीं आधुनिक विज्ञान ने इस क्षेत्र में कहाँ तक प्रगति प्राप्त की है और उसके ऐसे कौन से साधन हैं जो भूगर्भ के स्रोतों को ज़मीन के ऊपर से ही सुविधा से पहचान सकें, परन्तु भारत के पुरातन विद्वानों ने अवश्य ही ज्ञान की गम्भीरता और अनुभव के आधार पर ऐसे सिद्धान्त स्थिर किए हैं, जिनके द्वारा प्रत्येक भूमि के बाहरी लक्षणों और परीक्षणों द्वारा ज़मीन के किसी भी भाग में, कितनी ही गहराई में, प्रवाहित होने वाले जल-स्रोतों का सरलता से पता लगाया जा सकता है। ज्योतिर्विज्ञान के महान् आचार्य वराहमिहिर ने वर्षा और वायु-विज्ञान पर जिस प्रकार अधिकार पूर्वक सिद्धान्त स्थिर किए हैं, और जिनके परीक्षण से ६ मास पूर्व सारी वर्षा ऋतु के प्रत्येक जल-वर्षण की दिशा, मात्रा, और स्थिति का सफलतापूर्वक पूर्व-ज्ञान मिल जाता है और आज के वायु विज्ञान के साधन भी जिस गहराई में नहीं पहुँचे, उसको बिना यन्त्र-साधन के सहारे, केवल लक्षण-परीक्षणों से ही आँधी-तूफान आदि का परिचय प्राप्त करने का प्रयास किया है, उसी प्रकार ज़मीन से जल खोज निकालने की भी जो प्रक्रिया उन्होंने प्रस्तुत की है वह वास्तव में आश्चर्य और अत्यन्त महत्व की है। उनके सूचित लक्षणों, चिन्हों से विज्ञ ही नहीं अनभिज्ञ भी जलाशय खोदकर सुविधा के साथ पानी प्राप्त कर सकता है। उन चिन्हों से पानी की गहराई, स्थिति, लम्बाई, आदि का भी ज़मीन के ऊपर से ही पता चल सकता है। वराहमिहिर की तरह ही शारंगधर तथा अन्य आचार्यों ने भी जल-प्राप्ति-परीक्षा के सरल लक्षण बतलाए हैं। इन की सहायता लेकर यदि शासन और जनता प्रयत्न करे तो उसको अँधेरे में जल खोजते हुए भटकने और निरर्थक श्रम करने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। इन लक्षणों की सूचना के पीछे आचार्यों का अनुसंधान, दीर्घ और सूक्ष्म दृष्टि तथा लम्बे समय का अनुभव निहित है। शासन को इन का प्रयोग और परीक्षण करना चाहिए। उनकी दृष्टि अवश्य वैज्ञानिक रही है। किस वृक्ष की शिरा कितनी गहरी जाती है, और वहाँ से जल-पोषण प्राप्त करती है, किस प्रकार के चिन्ह कब, और क्यों होते हैं, और उनके रहते हुए जल की शिरा ज़मीन में कितनी निकट, या दूरी पर रहती है, यह दीर्घकालीन परीक्षण के सिवा सम्भव नहीं। उसके बाद ही उन्होंने जन-साधारण के लिए कुछ निश्चित-सिद्धान्त स्थिर किए हैं। सदियों से इन को आधार मान कर इस देश के किसानों और जानकारों ने इनसे लाभ उठाया है। शासन को चाहिए कि इनका जल प्राप्ति के लिए प्रयोग करे। यहाँ हम शारंगधर के सूचित लक्षण और अनुभव प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमें ज़मीन में कुआँ खोदने पर पानी प्राप्त होने के विभिन्न प्रकार के लक्षणों का रोचक, सरल, किन्तु महत्वपूर्ण विवरण है। यदि ये उपयोगी हुए, लाभप्रद हुए तो दूसरे आचार्यों के अनुभव भी प्रस्तुत करेंगे। शारंगधर का मत है कि

—पाताल से ऊपर जाने वाली जल की शिराएँ समस्त दिशा में व्याप्त रहती हैं, इस कारण परीक्षा करके ही भूमि

के बीच में जानेवाली जल-शिरा को पहचान कर ही जलाशय खोदना चाहिए.

—जहाँ पानी न हो, और खाली जगह में बेंत का पेड़ लगा हो, तो उसके पश्चिम की ओर तीन हाथ की दूरी पर ६ हाथ और १८ अंगुल की गहराई में पश्चिम-प्रवाहिनी जल की शिरा बहती है ।

—किसी खेत के पौने दो हाथ नीचे की मिट्टी पीली हो, या वहाँ अन्दर जमीन में दबा हुआ पीले रंग का मेंढक मिल जाए तो अवश्य ही उसके नीचे जो पत्थर होगा वहाँ पानी बहुत अधिक पानी सहज ही मिल जाएगा ।

—यदि जामुन का पेड़ हो, उसके निकट पूरब की ओर दीमक का स्थान हो, तो उसके दाहिनी ओर दो पुरुष के अन्दर उत्तम जल मिल जाएगा ।

—यदि आधे पुरुष के नीचे जमीन के अन्दर मछली का ढाँचा मिले, या कबूतर के रंग का पत्थर प्राप्त हो, काली मिट्टी दिखलाई दे तो उसके नीचे अर्से से एकत्र हुआ जल का स्रोत मिल जाएगा ।

—दीमक के टीले, तथा निगड के दाहिनी ओर तीन हाथ के ऊपर धरती में दो पुरुष के नीचे मधुर-स्वाद की कभी न सूखने वाली पानी की धार मिलती है ।

—आधे पुरुष के नीचे किसी जमीन में गोह मछली (रोहित) का ढाँचा दिखाई दे, पीले, और सफेद रंग की मिट्टी और बारीक बालू एवं कंकड़ दिखाई दें तो अवश्य उसके नीचे पानी है ।

—अगर बेर के पेड़ के पूर्व में दीमक का टीला खड़ा हो, जमीन खोदने पर सफेद रंग की गोह (जानवर) देखी जाए, आधे पुरुष के नीचे ही पानी है ।

—बेर का पेड़, बेर के फल से भरा हुआ हो, और पश्चिम की ओर ढोड साँप की ठठरी मिल जावे, वहाँ सवा ग्यारह हाथ के नीचे पड़ोस में जल मिलता है ।

—गूलर (उदुम्बर) के पेड़ के नीचे दीमक का टीला हो, उसके पश्चिम की ओर ११ हाथ नीचे पानी का सोता बहता है ।

—जहाँ पीलापन लिए मिट्टी हो, और दूध की तरह पत्थर हो, आधे पुरुष के नीचे जमीन में सफेद चूहा दिखलाई दे, बहेड़े के पेड़ के निकट दीमक का टीला हो, वहाँ ५ हाथ के नीचे ही पूरब की ओर पानी मिल जाता है ।

—और उसी के पश्चिम की ओर एक हाथ दूरी पर दीमक का टीला खड़ा हो, तो १६ हाथ के नीचे उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली जल की शिरा रहती है ।

—जमीन के पहले पुरुष के नीचे सफेद विश्वम्भरक न का जीव हो, और वहाँ पीलापन लिए हुए लाल रंग का पत्थर दिखाई दे तो उसके पश्चिम की ओर पानी मिल जाता है । किन्तु वह स्रोत तीन साल के बाद सूख जाता है ।

—जिस जमीन पर सफ़ेद कुश, कोविदार (कचनार) के पास दीमक दिखाई पड़े, उसके पश्चिम में १६ हाथ के नीचे जल होता है ।

—जिस जमीन में ३॥ हाथ के नीचे सर्प हो, गुलाबी रंग की मिट्टी, कुरुबिन्द पत्थर हो, पानी सहज मिलता है ।

—जिस जमीन में कोई भी पेड़ न हो, उसके नीचे यदि मेंढक दिखाई दे, तो १६ हाथ के नीचे पानी रहता है ।

—महुआ के पेड़ के उत्तर की ओर साँप का बिल हो तो वहाँ से उत्तर पश्चिम की ओर पाँच हाथ की दूरी पर उन्नीस हाथ १७ अंगुल के नीचे पानी मिल जाता है।

—जिस जगह साढ़े तीन हाथ के नीचे राजसर्प, धूम्रवर्ण की मिट्टी और कुलथ के रंग का पत्थर हो उसके नीचे पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली जलधारा होती है । वहाँ पानी में फेन रहता है ।

—कदम्ब के पेड़ के दक्षिण पश्चिम भाग में साँप का बिल हो, तो उसके पूर्व की ओर तीन हाथ की दूरी पर इक्कीस हाथ के नीचे गहरा पानी रहता है।

—यदि ताड़ और नारियल के पेड़ में दीमक लग रही हो, उसके पश्चिम में ६ हाथ की दूरी पर १४ हाथ नीचे पानी रहता है । उसकी शिरा दक्षिण में रहती है ।

—अश्मन्तक (पत्थर-फोड़ वृक्ष) के उत्तर की ओर बेरी का पेड़, या साँप का बिल हो तो उससे छः हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर ग्यारह हाथ अठारह अंगुल के नीचे पानी रहता है ।

—पहले पुरुष के नीचे जमीन में यदि कछुआ, अथवा धूसर रंग का पत्थर, और बालू रेत मिली मिट्टी हो, तो उसके नीचे दक्षिण की ओर बहने वाली जल की धारा होती है, उत्तर की ओर भी उसकी नहर मिलती है ।

—बिना पानी वाले प्रदेश में खस, या दूर्वा रहित जमीन पर अनूप-देश (नीमाड़) की तरह लक्षण दिखलाई दे तो साढ़े तीन हाथ के नीचे पानी मिल जाता है ।

—तिलक, आमडा, वरुण, भिलाँवा, लाल लौध, सेंदवा, बेर, अनार, सिरस (शिरीष) दारु हल्दी फालसा, अर्क (आँकड़ा), अशोक, पीले फूल का बरियार—इन पेड़ों के नीचे दीमक की दीवार दिखाई दे तो उनके उत्तर की ओर तीन हाथ की दूरी पर पन्द्रह हाथ अठारह अंगुल पर पानी बहता है ।

—जिस जमीन पर चारा न हो, वहीं यदि किसी भाग में चारा दिखलाई दे, अथवा जहाँ चारा खड़ा हो वहाँ कुछ जमीन बिना चारेवाली हो, उसके नीचे पानी अवश्य होता है।

—जहाँ बिना काँटे के पेड़ हों, वहाँ यदि कोई पेड़ काँटे वाला खड़ा हो तो उसके ठीक तीन हाथ पश्चिम की ओर चौदह हाथ नीचे पानी या द्रव्य होता है।

—किसी पेड़ की शाखा झुकी हुई हो, अथवा पीलापन लिए हो, उसके ठीक सामने वाली जमीन में १० हाथ नीचे पानी मिलता है।

—जिस पेड़ के फूल, या फल में कोई खराबी मालूम दे, उसके पूर्व में तीन हाथ की दूरी पर १४ हाथ नीचे पीले रंग की मिट्टी रहे, और पत्थर दिखलाई दे तो वहाँ पानी मिलता है।

—अगर सफेद फूल की रींगनी बिना काँटे वाली हो, तो उसके नीचे १० हाथ गहराई में पानी होता है।

—बिना पानी वाली जमीन में खजूर का पेड़ दो-शाखा लिए खड़ा हो तो उसके पश्चिम में साढ़े दस हाथ के नीचे पानी होता है।

—यदि स्थल कमल और पलाश के पेड़ों पर सफेद फूल दिखलाई दे, तो उसके उत्तर में १२ हाथ के नीचे पानी मिल जाएगा।

—जो जमीन हर वक्त गर्म मालूम दे, या जहाँ धुएँ की भाप निकलती हो उसमें सिर्फ ७ हाथ के नीचे गहरा पानी मिलता है।

—बेर के झाड़ के नीचे करील का पेड़ हो, उसके तीन हाथ पश्चिम में तिरसठ हाथ के नीचे ईशान दिशा में बहने वाली पानी की नहर रहती है।

—दीमक की बाँबी के ऊपर दूब या दर्भ लगे हों, उसके ठीक बीच में की जमीन में ७३ हाथ के नीचे पानी मिलता है।

—जिस जमीन में अर्जुन और करील, या अर्जुन या बिल्व-पत्र (बेल पत्र) सटे हुए लगे हों, या जरा ही दूरी पर हों, उसके तीन हाथ पश्चिम में साढ़े ७३ हाथ नीचे पानी है।

—जिस जमीन में धान पकने के पहले ही पीला पड़ने लग जाए उस जमीन में जल की प्रवाही शिरा रहती है।

—मरु (रेतीले) प्रदेश में पानी की शिराएँ हाथी की सूंड की तरह रहती हैं।

—ऐसी जमीन में पूरब, और उत्तर भाग में दीमक की बाँबी पीले रंग की हो, तो पश्चिम की ओर १७॥ हाथ पर उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाला जल-स्रोत रहता है।

—जहाँ जमीन में पहले मेंढक और फिर पीले रंग की मिट्टी मिले और खोदन पर ३॥ हाथ के नीचे की मिट्टी गर्म मिले उसके नीचे पानी होता है।

—बर और रोहितक के पेड़ आपस में सटे हुए दिखलाई दें, वहाँ दीमक की बाँबी न हो तो भी पश्चिम की तरफ तीन हाथ दूरी पर इक्कीस पुरुष के नीचे पानी मिलता है।

—जमीन के पौने दो हाथ के नीचे बिच्छू हो, और नीचे की जमीन सफेद रंग की हो तथा पत्थर मिले तो उसके उत्तर की ओर दक्षिण की तरफ बहता हुआ स्रोत मिलता है।

—जिस जमीन में कई गठानों वाला शमी का पेड़ हो, उत्तर की ओर दीमक की बाँबी हो, उसके पश्चिम में पाँच हाथ की दूरी पर डेढ़ सौ पुरुष के नीचे पानी मिलता है।

—जहाँ जामुन, काली निसौत, बेली आँवला, और दूर्वा, वाराही, ज्योतिष्मती गंडोवा, लज्जावंती, मादपर्णी इनमें से कोई वृक्ष पहाड़ी जमीन में दिखलाई दे, वहाँ पड़ौस की दीमक की बाँबी के तीन हाथ उत्तर में १०॥ हाथ नीचे पानी रहता है।

—यही बात अनूप-देश (नीमाड़ी इलाके) में लागू होती है। जँगली-पहाड़ी जमीन में उक्त लक्षण देख कर १७॥ हाथ तथा रेतीली जमीन में २६ हाथ नीचे पानी मिल जाता है।

—जिस जमीन में सब जगह एक-सी मिट्टी हो, चारा, पेड़ और दीमक के घर नहीं हों, वहाँ न होने वाली बातें दिखलाई दें तो पानी रहता है।

पानी के लिए जमीन कब देखी जाए, खुदाई की जाए, उसके लिए भी नियम हैं—जैसे, हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा षाढा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, शत तारिका,—इन नक्षत्रों में ही जलाशय की खुदाई उपयोगी होती है। इस खुदाई में पानी की जीवित-शिराएँ मिलती हैं।

गाँव नगर, या मकान के दक्षिण-पूर्व (अग्निकोण) में कुआँ नहीं बनाना चाहिए, यह भयजनक होता है। गाँव, या घर के नैरुत्य-दिशा में भी कुआँ नहीं रहना चाहिए, इसमें बच्चों के डूबने का भय रहता है। वायव्य कोण में सभी को भय रहता है। ईशान भी ठीक नहीं है। शेष दिशाएँ उपयोगी होती हैं।

जिस जमीन पर काँस, कुशा उगी हो, मिट्टी का रंग नीला हो, उसमें छोटी कंकड़ी मिली हो, अथवा जहाँ मिट्टी काली हो, तीखा स्वाद हो, उस जमीन के नीचे का पानी स्वादिष्ट मीठा रहता है। जो मिट्टी कपिल रंग की कंकरीली हो, स्वाद में कसैली हो, उस जमीन में पानी खारा होता है। मिट्टी पीली न हो और दूसरे रंग की हो, वहाँ पानी नमकीन रहता है। नीले रंग की मिट्टी वाली जमीन का पानी मीठा रहता है।

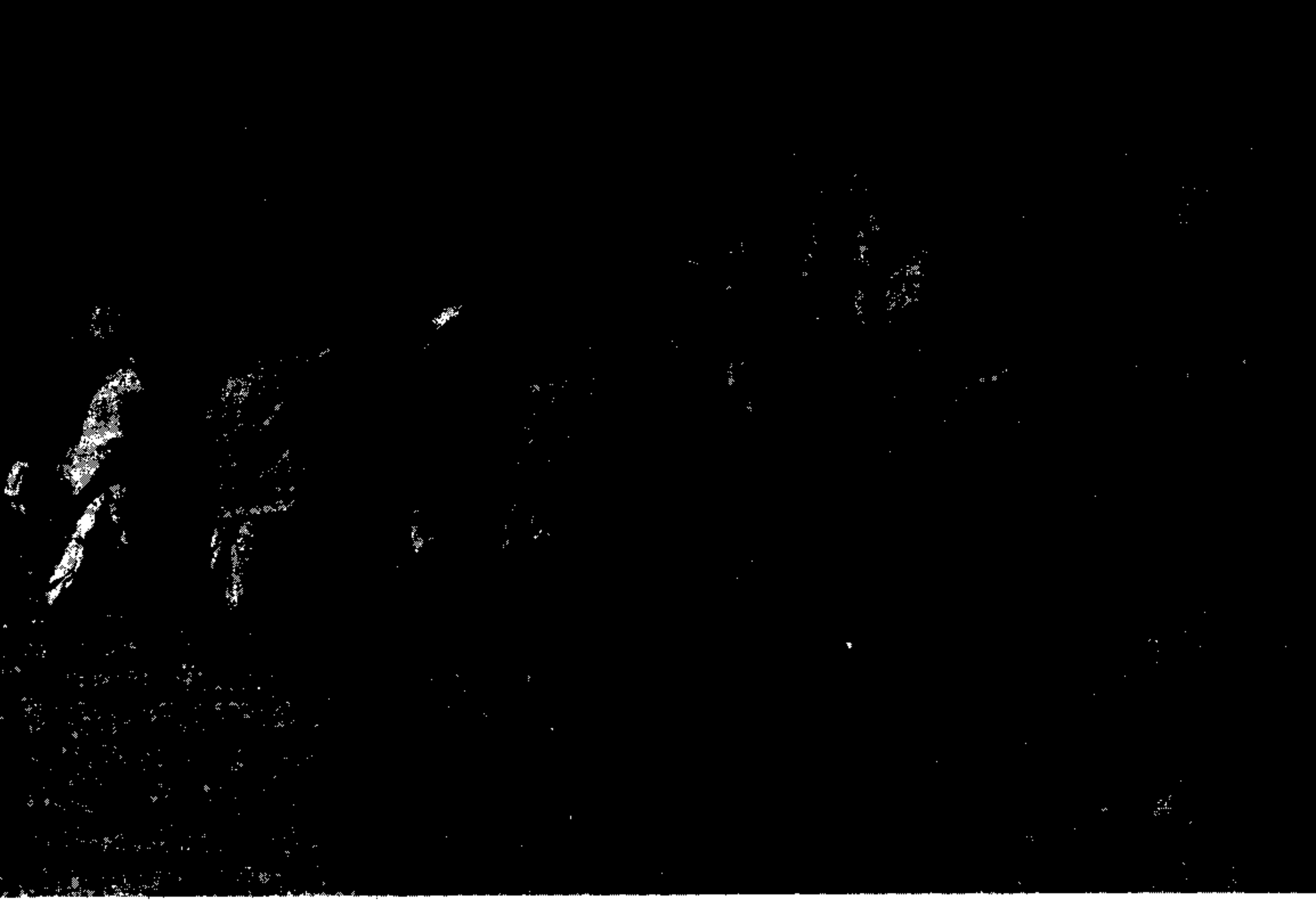

उत्तर प्रदेश के एक गाँव में श्रमदान द्वारा सड़क बनाई जा रही है

गाँवों में क्रान्ति

डी० आर० मन्केकर

हमारे अखबारों में मन्त्रि-मण्डलों पर आने वाले संकटों, राजनीतिक दाँवपेचों, और छात्रों की अनुशासनहीनता के समाचारों की तो भरमार रहती है. लेकिन ग्राम सुधार और विकास के क्षेत्र में राज्यों की सरकारें जो उल्लेखनीय काम कर रही हैं, उनकी कम चर्चा होती है।

भोपाल में फिरकादाराना दंगा हुआ तो भोपाल का जिक्र अखबारों के पहले पृष्ठ पर मोटे-मोटे शब्दों में हुआ। मध्य भारत सरकार के काम में इन्दौर और ग्वालियर की आपसी रस्साकशी के कारण कितनी रुकावट पड़ रही है, यह भी पाठकों को पढ़ने को मिल जाता है। लेकिन भोपाल से बाहर के कुछ ही लोग इस तथ्य को जान पाते हैं कि भोपाल प्रथम पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों से कहीं आगे बढ़ चुका है। मध्य भारत ने सामुदायिक विकास के क्षेत्र में जो उल्लेखनीय काम किया है या विन्ध्य प्रदेश अच्छी सड़कें और स्कूल बनाने के लिए क्या-कुछ नहीं कर रहा, उसे उन राज्यों के बाहर गिने-चुने व्यक्ति ही जानते हैं।

इन राज्यों और शायद ऐसे ही कई अन्य राज्यों के गाँवों में से गुज़रने पर बड़े आनन्ददायक अनुभव प्राप्त होते हैं। यह एक ऐसी तीर्थ-यात्रा है, जिससे हमारे हृदय में अपने लोगों पर गर्व करने की भावना पैदा होगी, भले ही यात्रा में हमें काफी धूल फाँकनी पड़े। इस यात्रा से हमें उस महान् क्रान्ति का आभास मिलता है जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम के फलस्वरूप भारत के गाँवों में हो रही है। लोगों को अधिक कृषि-उत्पादन और भरपूर और श्रेष्ठ जीवन जैसी भौतिक सफलताओं से मिल-जुल कर अपनी दशा खुद सुधारने की इतनी प्रेरणा नहीं मिली है, जितनी आज के गाँवों के वाता-

वरण में बसी हुई पुरानी व्यवस्था को बदलने की भावना से मिली है। आप वहाँ पहुँच कर अपने-आप को एक नई दुनिया में पाते हैं, उस दुनिया में, जिसमें नई ज़िन्दगी है, नया जोश है।

सामूहिक श्रम के महत्व को वे लोग अब पहले से कहीं अधिक समझने लगे हैं और श्रमदान गाँव वालों के जीवन का एक अभिन्न अंग बनता जा रहा है। इस जादुई मन्त्र की कृपा से अब गाँवों में पंचायत घर, स्कूल, प्रवेश सड़कें, दवाखाने, कुएँ और सिंचाई के लिए तालाब आदि बन गए हैं।

पंचायत घर में लगा हुआ पंचायती रेडियो उनको अपना जीवन सुधारने में बहुत सहायता देता है, क्योंकि मनोरंजन के साथ-साथ इससे उन्हें अपनी फसलों और मौसम के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त होती रहती है और देश विदेश की खबरें भी सुनने को मिलती हैं। हर-रोज़ शाम को बड़े-बूढ़े रेडियो सुनने पंचायत घर में इकट्ठे होते हैं। देहाती प्रोग्राम सबसे अधिक लोकप्रिय हैं परन्तु कुछ छोटी उम्र के श्रोता फिल्मी गाने सुनने के लिए सीलोन भी लगा लेते हैं।

गाँववालों का विकास-योजना प्रशासक में अत्यधिक विश्वास है और उसे वे अपना माई-बाप समझते हैं। मुझे विश्वास है कि अगर वह आम चुनावों में खड़ा हो जाए तो उसके विरोधी की ज़मानत ही ज़ब्त हो जाएगी क्योंकि गाँव का हर व्यक्ति अपने कृपालु, मित्र, सलाहकार और पथ-दृष्टा को ही वोट देगा।

सितम्बर १९५२ में नीलोखेड़ी से ताज़ा-ताज़ा प्रशिक्षण प्राप्त करके एक युवा अफसर राजपुर (मध्य भारत) पहुँचा। इस नवयुवक के दिमाग में नई-नई बातें घूम रही थीं। उन दिनों यह सारा क्षेत्र अभाव-ग्रस्त था। जहाँ भी यह नवयुवक अफसर गया, लोगों ने इसका खामोशी और पथराई हुई आँखों से स्वागत किया। गाँव वाले सरकारी अफसरों का विश्वास नहीं करते थे और किसी भी सामूहिक कार्य में रुचि नहीं लेते थे। गाँव की सफाई, बच्चों के लिए स्कूल, बीजों में सुधार और खेती करने के तरीकों में सुधार--किसी चीज़ से उनका कोई मतलब नहीं था।

अब गाँवों में स्त्रियाँ सुबह घरों के साथ-साथ पक्की गलियों की भी सफाई करती हैं

क्या बूढ़े, क्या बच्चे, सभी में श्रमदान के लिए उत्साह है

गाँववालों के रुख से उस नवयुवक का दिल टूट गया—उसे अपनी असफलता से अत्यधिक निराशा हुई। उसने नौकरी छोड़ कर शहर वापस लौट जाने का निश्चय किया। परन्तु उसने अभी पूरी तरह हथियार नहीं डाले थे। इसलिए शहर लौटने से पूर्व उसने एक बार आखिरी कोशिश करने की सोची, उसने सारी समस्या पर नए सिरे से विचार किया। वह इस नतीजे पर पहुँचा कि गाँववालों की मुख्य समस्या अभाव थी—खेतों की सिंचाई के लिए पानी का अभाव था और गाँव वालों के लिए और उनके मवेशियों के लिए खाद्य का अभाव था। 'अगर किसी तरह पानी की समस्या हल हो जाए, तो सम्भवतः गाँव वाले मुझ पर विश्वास करने लगें और मेरे काम में मुझे सहयोग देने लगें'—बहुत सोचने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा।

इसी चीज को सामने रखते हुए उसने नए सिरे से काम शुरू किया। इस चीज का हल था सिंचाई के लिए कुएँ बनवाना। लेकिन कुओं के लिए पैसा कहाँ से आए? पैसा तकावी ऋण से मिल सकता था लेकिन इसमें भी कई कठिनाइयाँ थीं। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि ऋण का मामला धीरे-धीरे ही आगे बढ़ सकता था और देर हो जाने से सारा मामला खटाई में पड़ जाने का डर था। इस समस्या को उस ने स्थानीय तहसीलदार से मिल कर हल कर लिया। सारे फार्म उसने गाँववालों की तरफ से खुद भर लिए और बाकी सब आवश्यक बातें भी पूरी कर ली। इस तरह एक-दो सप्ताह के अन्दर-अन्दर तकावी ऋण की अर्जी पास हो गई।

इस तरह शुरुआत हुई। पहले-पहल जिन किसानों को तकावी ऋण मिला उन्होंने इसको मिलते ही सिंचाई-व्यवस्था में लगा दिया। यह सब देखकर बाकी गाँववालों की आँखें खुली की खुली रह गईं। इसके बाद तो कुएँ बनवाने के लिए ऋण मांगने वालों की संख्या रोज बढ़ती गई। इसके

बाद उन्होंने बहतर किस्म के बीजों के लिए विकास-योजना अधिकारी की मदद मांगी और उसी की सहायता से आधुनिक ढंग से खेती करने के तरीकों का ज्ञान प्राप्त किया। जब विकास-योजना अधिकारी ने उन्हें सुझाया कि अब वे दो फसलें उगा सकते हैं, तो यह बात एकदम उनकी समझ में आ गई और वे लोग पपीते की खेती करने लगे। उस अधिकारी ने उन्हें पपीते के सर्वोत्तम बीज दिलवाने में सहायता दी। वह दिन भी जल्दी ही आ गया जब बैलगाड़ियों का कारवाँ फलों से लदा हुआ मण्डियों की तरफ चला गया। इस तरह गाँववालों की आय में वृद्धि हुई।

अब गाँववाले उस नवयुवक अफसर की हर बात मानने को तैयार रहते हैं। श्रमदान से उन्होंने प्रवेश सड़कें बना दी हैं जिनके कारण कस्बों की मण्डियों का फासला लगभग आधा रह गया है। गाँव के बच्चों के लिए स्कूल भी खुल चुका है और बीमारों के लिए दवाखाना भी। अब गाँववाले अधिकारियों के पीछे घूमते हैं और गाँव के प्राइमरी स्कूल को मिडिल स्कूल में बदलने और गाँव के दवाखाने में एक प्रसूति विभाग खोलने में उनकी सहायता मांगते हैं।

एक बार जब गाँववालों में जोश आ जाता है तो दुनिया का कोई भी काम ऐसा नहीं है, जो वे न कर सकते हों। सभी जगहों की कहानी लगभग एक-सी है—आरम्भ में अविश्वास और विरोध, फिर अधिकारियों की दौड़-धूप और अन्ततः विकास-योजना अधिकारी की सफलता। एक बार जब अधिकारी गाँववालों का दिल जीत लेता है, तो सब काम तेज़ी से आगे बढ़ने लगते हैं।

राजपुर सामुदायिक योजना-क्षेत्र में मवेशियों को टीके लगाए गए, फलस्वरूप पिछले तीन साल में वहां के मवेशी किसी बीमारी का शिकार नहीं हुए। डी० डी० टी० छिड़कने और कुओं में क्लोरिन छिड़कने के फलस्वरूप मलेरिया और गन्दे पानी के कारण पैदा होने वाली अन्य बीमारियों में बहुत कमी हो गई है। हर गाँव में एक विकास परिषद की स्थापना की जा चुकी है, जिसका काम कार्यक्रम तैयार करना, सहायता का उपयोग करना, योजना को कार्यान्वित करना और ऋण के लिए सिफारिशें करना है। कई गांवों में सेवा दल हैं जो कल्याण कार्य करते हैं और गाँवों की डाकुओं से रक्षा करते हैं। कुछ गाँवों के नारी कल्याण केन्द्रों में सिलाई विभाग हैं जो वहाँ की स्त्रियों को उपयोगी काम-धन्धे सिखाते हैं।

हर परिवार की अपनी अलग योजना है जो घर के दरवाज़े पर लिखी होती है। इसमें मौसम के कृषि कार्यक्रम के अलावा घर की सफेदी, बगैर धुएँ के चूल्हे की स्थापना और अच्छी किस्म की टट्टी का निर्माण आदि मद शामिल होते हैं। गाँव के गलियारों को पक्का बनाया जा रहा है और उनकी बिला-नागा सफाई होती है। कुओं की सफ़ाई पर भी ज़ोर दिया जाता रहा है।

भोपाल के सामुदायिक विकास कार्यक्रम की दो विशेषताएँ—पारिवारिक कैम्प और रथ यात्रा ऐसी हैं, जिनसे दूसरे राज्य भी लाभ उठा सकते हैं। समय-समय पर पास-पड़ौस के कई गाँवों के परिवार किसी बागीचे में या आम के पेड़ों के झुरमुट में इकट्ठे रहते, खाते-पीते और खेलते हैं। वहाँ मनोरंजन कार्यक्रम होता है और सामुदायिक विकास कार्यक्रम सम्बन्धी सेमिनार भी होते हैं। गाँव के भित्ति-चित्रकारों, अभिनेता, और नृतकों को अपनी-अपनी कला दिखाने का अच्छा अवसर मिलता है। कैम्प लगभग एक सप्ताह तक लगता है और अक्सर फसल के बाद लगता है ताकि किसानों को अपनी खेती की चिन्ता न रहे। रथ यात्रा सजी हुई बैलगाड़ियों का ऐसा काफिला होता है, जिसमें क्षेत्र के आदर्श गाँव की चुनी हुई वस्तुओं का दूसरे गाँववालों के सामने प्रदर्शन किया जाता है। यह एक चलता-फिरता मेला और नुमायश होती है जिसमें बड़े-बड़े इश्तिहार होते हैं जिन पर सामुदायिक विकास सम्बन्धी नारे लिखे रहते हैं। इन दोनों चीज़ों को इतनी अधिक सफलता मिली है कि केन्द्रीय प्रशासन ने और राज्यों से इन्हें अपनाने की सिफारिश की है।

विन्ध्य प्रदेश में भी सामुदायिक विकास के क्षेत्र में काफी अच्छा काम हुआ है, हाँ यह उतना व्यापक और उल्लेखनीय अवश्य नहीं है।

हृदय-परिवर्तन

कृष्णवल्लभ शर्मा

"हाँ तो आज हमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम पर विचार करना है। उस कार्यक्रम का सीधा सम्बन्ध आप लोगों से है। उसकी सफलता पर आपकी, आपके गाँव की सुख-समृद्धि और श्रीवृद्धि आश्रित है।" ग्राम सेवक वीरदान ने ये शब्द अघापुर गाँव के सामुदायिक केन्द्र पर एकत्रित ग्रामवासियों को सम्बोधन करते हुए कहे। वह अभी-अभी विकास-खण्ड के मुख्य कार्यालय की एक विशेष बैठक में भाग लेकर लौटा था।

यह विकास-खण्ड जिसके अन्तर्गत अघापुर ग्राम था, उन अनेक विकास खण्डों में से एक था, जो उन क्षेत्रों में खोले गए थे, जहाँ की जनता को सामन्तवाद और शोषण के पंजों से कुछ समय पूर्व ही छुटकारा मिला था। विकास खण्ड खुलने से यहाँ नव-चेतना और जागृति का अभ्युदय हुआ था। युगों से दमन-चक्र से भयभीत ग्रामीण जनता को इन विकास कार्यों से राहत और सान्त्वना मिली थी। परन्तु अब भी वहाँ कुछ प्रतिक्रियावादी तत्व मौजूद थे जो विकास के मार्ग में बाधक थे। इसीलिए वहाँ वीरदान जैसे कार्यकुशल, परिश्रमी और मिलनसार कार्यकर्ता की नियुक्ति की गई थी। वह यह भली भाँति जानता था कि सामुदायिक विकास-योजनाओं की सफलता जनता के क्रियात्मक सहयोग पर ही निर्भर है। वह प्रत्येक कार्यक्रम को गाँव के लोगों के सम्मुख ऐसे ढंग से पेश करता कि उसके सफलतापूर्वक क्रियान्वित होने में कोई सन्देह ही न रह जाता।

विकास-खण्ड की विशेष बैठक में, जहाँ से कि वीरदान अभी लौटा था, उस राजकीय परिपत्र पर विचार हुआ था, जिसमें राज्य के समस्त विकास खण्डों में श्रमदान-पखवाड़ा मनाने का अनुरोध था। विकास अधिकारी ने सब ग्राम सेवकों को श्रमदान पखवाड़े के आयोजन सम्बन्धी आवश्यक बातें भली भाँति समझा दी थीं।

सामुदायिक केन्द्र पर एकत्रित लोगों को वीरदान श्रमदान के विषय में ही समझा रहा था। उसने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा—"भाइयो, सरकार तो केवल सहायता ही कर सकती है, सारा कार्य तो आप ही को करना है। सरकार सहारा ही दे सकती है, मंजिल तो आप ही को पकड़नी है। मंजिल तक पहुँचने के लिए श्रम आवश्यक है। आओ ऊँच-नीच, छूत-अछूत का भेद भाव भुलाकर सब एक साथ काम में जुट जाएँ और श्रमदान से गाँव की काया पलट दें।"

एकत्रित समुदाय में वीरदान के इन शब्दों से उत्साह की लहर दौड़ गई। काम करने के लिए उनकी रगों में नया खून दौड़ने लगा। परन्तु उस समुदाय में कुछ ऐसे सामन्तवादी लोग भी उपस्थित थे जिन्हें अपनी सत्ता से वंचित होने पर खिजलाहट थी, उनके अन्तर में प्रतिकार और प्रतिशोध की भावना थी। गाँव में वर्ग-भेद के उन्मूलन और नवीन चेतना के संचार से उनको चिढ़ थी और अब यह श्रमदान, ऊँच-नीच और छूत-छात के भेद-भाव को भुला कर कन्धे से कन्धा भिड़ाकर काम करने की बात, उनके अभिमान और थोथी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचा रही थी।

कार्यक्रम के अनुसार अघापुर ग्राम के लिए श्रमदान की तिथि निश्चित हो गई। कल श्रमदान पखवाड़े का श्रीगणेश होगा।

*　　*　　*　　*

"मैंने कहा था न, देख लो, लुटिया ही डुबो दी। भला यह भी क्या जमाना आया है? कहते हैं कि श्रमदान करिए, ऊँच-नीच और छूत-छात का भेद मिट कर सब एक साथ काम कीजिए। गाँव की काया पलटेंगे, बड़े आए......।" ठाकुर गजधरसिंह अपनी बिच्छू के डंक-सी मूँछों पर ताव देकर, उपेक्षा से मुँह बनाते हुए बोले।

उनके पास ही उनके कुछ चाटुकार और 'जी हुजूर' बैठे थे। गाँव के बड़े मन्दिर के महन्त, जिनको शायद ठाकुर साहब के यहाँ से दान-दक्षिणा में अच्छी रकम मिल जाती थी, अजीब-सा मुँह बनाकर बोले—"अजी सब धरम-करम डुबो दिया। शास्त्रों में लिखा है कि क्षत्रिय राज करने को, ब्राह्मण विद्या पढ़ने-पढ़ाने को, वैश्य वाणिज्य-व्यवसाय को और शूद्र सेवा को बने हैं। परन्तु साहब इनके तो पैतरे ही अलग हैं, कहते हैं सब सेवा करो, इकट्ठे होकर मेहनत करो। यह भी कोई बात हुई।"

ठाकुर साहब अपनी मोटी गर्दन हिलाते हुए बोले—"नहीं साहब, हम तो ऐसे 'अधरम' में साथ नहीं दे सकते। जो चीज शास्त्रों के ही खिलाफ है उससे क्या काया पलटेगी? मैं कहता हूँ धरती रसातल को चली जाएगी, ऐसे पाप से।"

......और उन समस्त प्रतिक्रियावादियों ने एकमत हो निश्चय किया कि वे श्रमदान का बहिष्कार करेंगे।

वीरदान घर-घर अलख जगाता घूमता रहा । गाँव के स्त्री-पुरुषों के पास प्रगति का संदेश पहुँचाने और श्रमदान के लिए उत्साह पैदा करने में उसने अथक परिश्रम किया ।

दूसरे दिन रवि की प्रथम किरण के धरती पर उतरने के साथ ही श्रमदान पखवाड़ा आरम्भ हुआ । ठाकुर गजधरसिंह और उनके कुछ अन्य साथियों के अलावा समस्त ग्रामवासियों का समूह उत्साह से श्रमदान करने निकल पड़ा।

अघापुर गाँव को शहर जाने वाली मुख्य सड़क से मिलाने के लिए एक कच्ची सड़क के निर्माण का कार्य श्रमदान कार्यक्रम में सर्व-प्रथम था । इससे गाँव की फसल को शहर तक बगैर किसी असुविधा के और शीघ्रता से पहुँचाया जा सकता था, और वह कच्ची सड़क आवागमन के साधन के एक बड़े अभाव की पूर्ति थी ।

गाँव के समस्त आबाल-वृद्ध, नर-नारी, छूत-अछूत और बड़े-छोटे का भेद भूलकर श्रमदान द्वारा सड़क के निर्माण में लगे थे । सब में बड़ा जोश था, जैसे प्रगति स्वयं कार्य-क्षेत्र में आ जुटी हो ।

श्रमदान स्थल से दूर ठाकुर साहब अपने सहयोगियों सहित खड़े श्रमदान रत ग्रामवासियों का उपहास उड़ा रहे थे । "देखा महन्त जी, यह लोग ऊँची जाति का होने का दम भरते हैं, कैसी मजदूरी कर रहे हैं । अरे उस कैलाश को देखो कहता है कालिज में पढ़ कर आया हूँ, कैसा फावड़ा चला रहा है, जैसे पुश्तैनी मजदूर हो । भाड़ में झोंक दी इसने तो पढ़ाई-लिखाई ।"

महन्त जी बोले—"अजी वहाँ देखिए, वह पण्डित रमानाथ जी क्या कर रहे हैं ? हरे, हरे, सब धरम डुबो दिया, हेता महतर के साथ मिट्टी की टोकरी ढो रहे हैं ।"

*   *   *   *

दोपहरी चढ़ती आ रही थी। श्रमदान कार्य अधिक वेग से चल रहा था । ग्रामीण वधुओं और बालाओं के मधुर कण्ठों से निकले लोकगीतों की मोहक लय श्रमदानियों को प्रेरणा और उत्साह प्रदान कर रही थी । सड़क आधी के लगभग बन चुकी थी । अघापुर गाँव में विकास के चरण आगे बढ़ते जा रहे थे । तमाशबीनों की भाँति दूर खड़े ठाकुर और उनके साथियों के दिलों पर कुछ और ही बीत रही थी । निर्माण के इन महान् कार्यों से उनकी झूठी प्रतिष्ठा, थोथे अभिमान और अहंकार के महल खण्डहर बनते जा रहे थे। श्रमदान में उनके असहयोग से उनका स्वयं का मन उन्हें कचोट रहा था । अपने हीन विचारों के लिए वे सब अपने आप में अपमानित हो रहे थे । विकास और प्रगति के देवता ने जैसे उनकी आँखों के सामने से पर्दा उठा दिया था, और बुद्धि को निर्मलता का वरदान दे दिया था ।

श्रमदान पखवाड़े का द्वितीय दिवस अघापुर गाँव के इतिहास में चिर-स्मरणीय बन गया । गाँव के लोगों की आँखें आश्चर्य से चौंधिया गईं जब उन्होंने देखा कि ठाकुर गजधरसिंह अपने साथियों सहित फावड़ा लिए श्रमदानियों की टोली में जा मिले । ऊँच-नीच की कृत्रिम दीवार ढह गई । समस्त ग्रामवासी अपने स्वेद बिन्दुओं से धरती का शृंगार करने जा रहे थे और विकास का देवता मुस्करा रहा था ।

भारत में बुनियादी शिक्षा

राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद

१९३८ में जब से गान्धीजी ने शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त का सूत्रपात किया, उस समय से इस प्रणाली के सम्बन्ध में मेरी जो कुछ जानकारी है उसके आधार पर, मैं समझता हूँ, बुनियादी शिक्षा को हम एक ऐसी प्रणाली कह सकते हैं जिसका ध्येय पढ़ाई और रचनात्मक काम द्वारा अथवा दस्तकारी के माध्यम से पढ़ाई द्वारा बच्चों का शारीरिक और बौद्धिक विकास है। इस प्रणाली के अन्तर्गत बच्चे साधारण तौर से अक्षर-बोध प्राप्त करते हैं, किन्तु यह प्रयास दस्तकारी अथवा उनकी अपने हाथ से बनाई हुई चीज़ों के माध्यम से किया जाता है। दस्तकारी के द्वारा शिक्षण, जो बुनियादी शिक्षा प्रणाली की सर्वप्रथम विशेषता है, शरीर और मस्तिष्क अथवा बुद्धि के विकास का मार्ग सहज ही प्रशस्त करता है। दस्तकारी के द्वारा बच्चों के हाथ पाँवों का ही उचित विकास नहीं होता बल्कि पढ़ाई का काम अधिक रोचक और कम कष्टदायक हो जाता है। रचनात्मक प्रवृत्ति से मस्तिष्क और सहज बुद्धि के विकास में सहायता मिलती है।

जब गान्धी जी ने इस नए विचार को देश के सामने रखा, उनके मन में एक और ध्येय भी था। बच्चे जो चीज़ें हाथ से बनाते हैं वे बेची भी जा सकती हैं और इस प्रकार जो धन प्राप्त हो उसके द्वारा शिक्षा पर होने वाले खर्च का कम से कम कुछ भाग पूरा किया जा सकता है। गान्धी जी का यह विश्वास था कि भारत जैसे महान् देश में इस प्रकार की व्यवस्था के बिना चिरकाल तक सर्व-शिक्षा का हमारा आदर्श स्वप्न मात्र रहेगा। महात्मा जी का विचार था कि उचित शिक्षा के साथ-साथ बुनियादी शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत देश में शिक्षा पर बराबर बढ़ते हुए खर्च का एक हिस्सा दस्तकारी द्वारा पूरा किया जा सकता है।

१९३८ से ही देश के शिक्षा-सम्बन्धी क्षेत्रों में बुनियादी शिक्षा विचार का विषय रही है, यद्यपि केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार परिषद समय-समय पर इस प्रणाली पर विचार करती रही है और इसका अनुमोदन भी करती रही है। स्वाधीनता के बाद केन्द्रीय और राज्यों के शिक्षा विभाग इस प्रश्न का गम्भीर विवेचन करते रहे हैं और बुनियादी शिक्षा देश के सभी भागों में प्रयोग के रूप में चालू भी की गई है। अनेक कठिनाइयों और समस्याओं के बावजूद यह परीक्षण बराबर जारी रहा है और प्रतिवर्ष बुनियादी स्कूलों की संख्या में और प्रशिक्षण-सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि होती रही है।

जब हम स्थिति पर विचार करते हैं और अभी तक जो प्रगति हुई है उसे आँकने का यत्न करते हैं, तो एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, अर्थात, क्या हम प्रारम्भिक कठिनाइयों को पार कर चुके हैं और विवाद की स्थिति से ऊपर उठ चुके हैं? मुझे भय है कि इस प्रश्न का 'हाँ' में उत्तर देना सम्भव नहीं है, परन्तु इसके साथ ही 'नहीं' कहना भी उतना ही गलत होगा। पर्याप्त संख्या में अनुभवी और प्रशिक्षित अध्यापकों को प्राप्त करना निस्संदेह इस प्रणाली को लोकप्रिय बनाने के रास्ते में सबसे बड़ी कठिनाई है। किन्तु हमारे प्रशासकों और शिक्षकों में से कुछ इस प्रणाली के औचित्य और व्यावहारिकता के सम्बन्ध में अभी भी सन्दिग्ध जान पड़ते हैं। यह ठीक हो सकता है कि इस प्रणाली की विस्तृत कार्यविधि का अभी पूर्ण विकास न हुआ हो अथवा उसके कार्यक्रम ने निश्चित रूप धारण न किया हो। हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियों में काफी भिन्नता है और इस दिशा में जो बड़े-बड़े परीक्षण किए गए हैं उन्हें या तो सीमित पैमाने पर किया गया है या असाधारण परिस्थितियों में किया गया है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि अभी तक जो अन्तिम परिणाम प्राप्त हुए हैं वे ऐसे नहीं जिन्हें सारे देश पर लागू किया जा सके। देश भर में शिक्षा की प्रणाली में आमूल परिवर्तन करना निश्चय ही एक कठिन कार्य है।

हमारे देश में अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा की समस्या की पेचीदगी को समझने वाले किसी भी व्यक्ति को इन कठिनाइयों के कारण, जिनका मैंने ज़िक्र किया है, हतोत्साह होने की ज़रूरत नहीं। किन्तु अधिक महत्वपूर्ण और मूल प्रश्न यह है कि वे लोग जिन्हें देश की शिक्षा-सम्बन्धी नीति को अमल में लाने का काम सौंपा गया है और जो वास्तव में बच्चों को पढ़ाते हैं, उन्हें बुनियादी शिक्षा की व्यावहारिकता और उपादेयता पर पूरा भरोसा है या नहीं? यदि निजी अनुभव और आवश्यक ज्ञान के आधार पर उन्हें इस प्रणाली की व्यावहारिकता पर पूर्ण विश्वास हो गया है, तो मैं समझता हूँ बड़ी से बड़ी कठिनाइयाँ उनका मार्ग नहीं रोक सकेंगी और वे सर्व-शिक्षा

के लक्ष्य की ओर बराबर बढ़ते जाएँगे। परन्तु, दूसरी ओर, यदि इस प्रणाली में उन लोगों की ही आस्था ढुल-मिल है और वे ऊपर से दिए गए आदेशों का पालन करने मात्र के लिए इस कार्य में लगे हैं, तो उस दशा में अधिक से अधिक धनराशि और बड़ी से बड़ी सुविधाएँ भी हमें निर्धारित लक्ष्य की ओर नहीं ले जा सकतीं। मैं जानता हूँ कि इस प्रश्न पर ही नहीं, दूसरे प्रश्नों पर भी मतभेद की गुंजाइश हो सकती है, किन्तु मेरी धारणा थी कि शिक्षा जैसे आधारभूत प्रश्न पर हम इस समय तक इस प्रकार के मतभेदों को दूर कर चुके होंगे और पुनर्निर्माण के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त कर चुके होंगे। एक प्रजातन्त्रात्मक देश में शिक्षा का कितना ऊँचा स्थान होना चाहिए और राष्ट्रीय कार्यक्रम में उसे क्या प्राथमिकता मिलनी चाहिए, इस सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिए आवश्यक नहीं। मैं आशा करता हूँ कि अपने सीमित साधनों के साथ भी केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय तथा राज्यों के शिक्षा विभाग शिक्षा प्रसार के जो यत्न कर रहे हैं, वे सफल होंगे और देर-सवेर हम अज्ञान और निरक्षरता का उन्मूलन करने में कामयाब होंगे।

●

यदि अमेरिका को अपने स्कूल-कालेजों का पाठ्यक्रम अपने विद्यार्थियों की पढ़ाई का खर्चा निकालने योग्य बनाना पड़ता है, तो हमारे स्कूल-कालेजों के लिये वह कितना अधिक आवश्यक है? क्या यह कहीं अच्छा नहीं होगा कि हम गरीब विद्यार्थियों की फीस माफ करके उन्हें भिखमंगे बनाने के बजाय उनके लिये काम जुटा दें? भारतीय युवकों के दिमागों में यह झूठा ख्याल भरकर कि अपनी जीविका या पढ़ाई के लिये हाथ-पैरों से मेहनत करना अभद्रता है, हम उनकी जो हानि करते हैं, उसे बढ़ा चढ़ाकर बताना असम्भव है। इससे नैतिक और भौतिक दोनों प्रकार की हानि होती है और सच पूछा जाय तो भौतिक से नैतिक हानि कहीं अधिक होती है। फीस माफ़ होने की बात जाग्रत लड़के के मन पर जीवन भर बोझा बनकर रहती है और रहनी चाहिये। बाद के जीवन में कोई यह याद दिलाया जाना पसन्द नहीं करता कि उसे अपनी शिक्षा के लिये दान पर आश्रित रहना पड़ता था। इसके विपरीत ऐसा कौन आदमी होगा जिसे अपनी शिक्षा के लिये—अपने मन, शरीर और आत्मा की शिक्षा के लिये किसी बढ़ई, लुहार आदि की दुकान पर काम करने का सौभाग्य मिला हो और वह उन दिनों को गर्व के साथ याद न करे?

—**महात्मा गांधी**

उद्बोधन

रामरत्न बडौला

पीलो, पीलो
अमृत पीलो
यह चांद नहीं है
अमृत का घट है
ढुलक रहा है
छलक रहा है
बरसा है मीलों
लैम्प बुझा बिजली के
बाहर आओ
ऊँचे भवनों की जेलों से
बाहर आओ
मखमली घास पर बैठो
खुशियों में जीलो
अमृत पीलो।

दूर दृष्टि के पार
हरियाली की बहार
खेतों व मैदानों से
आई है पुकार
धरती की देवी की
पायल की झंकार
सौन्दर्य रूप यह है
चाँदी का संसार
गाते हैं मीठे गीत
मोती-सी बालें
झूम-झूम मस्ती में
पवन बजाता गालें
झुक झुक कर लज्जा से
पौधे आँचल सम्भाले
पहनी गेहूँ चावल ने
सोने की खालें
कहीं पास से कोई
वन गाता है गीत—
मीठे फल-फूलों से
झुकी डालियाँ, मीत !
देती हैं आज निमन्त्रण
मैंने कोष लुटाया
पर भूला भटका मानव
कोई पास न आया
यदि तुम इतने अभिमानी
तो मैं ही पास चला आऊँ
बंजर धरती रोती है
उसको गले लगाऊँ।
लो कुदाल हाथों में
धरती की प्यास बुझाओ
आंगन पास कहीं अपने
फल के बाग लगाओ
मैं दान दे रहा जीवन
अपनी क्षुधा मिटाओ।

जीवन का मोल नहीं है
मखमल के गद्दों पर सोना
कविता का तोल नहीं है
अश्रु से पद-माल पिरोना
धरती का स्वर पहचानो
कर धरती का नव-शृंगार
फूलों की पाँखों में रे
नहीं सोता है थका प्यार
धरती जीवन देती है
तुम धरती को जीवन दो
स्वेद बूँद मस्तक के
आँचल में आज समेटो
कर दो देवी को अर्पण
देवी की प्यास बुझेगी
वे हैं अमृत की बूँदें
सब मटमैलापन धोती
दिल के टूटे नीड़ों में
आशादीप संजोती
अपनी मेहनत के बल पर
बनती हैं आभूषण
आभूषण उन्हें बना लो
गीत खुशी के गाकर
सोने का संसार बसा लो।

मण्डी की ओर

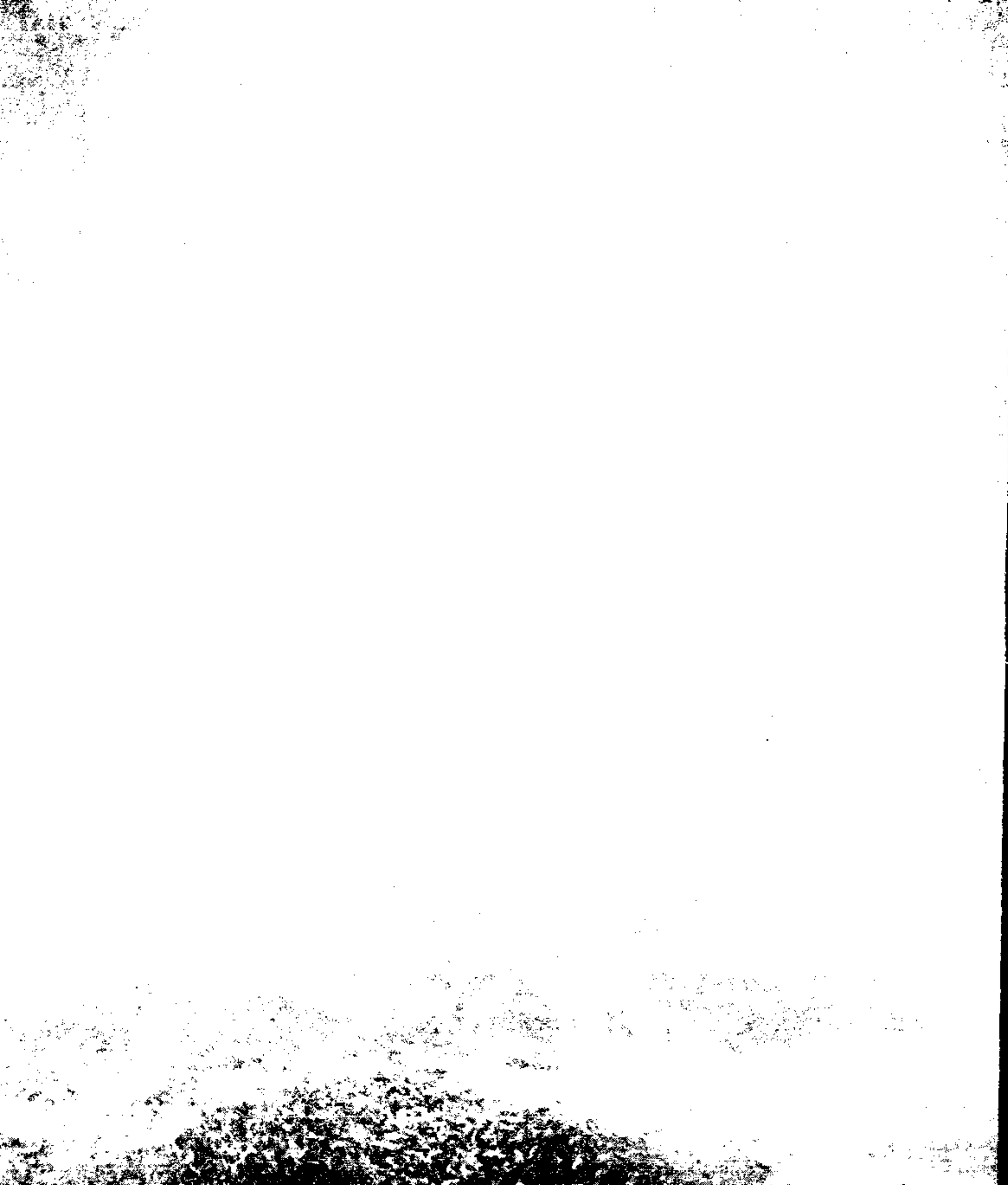

वन की ओर

घर की ओर

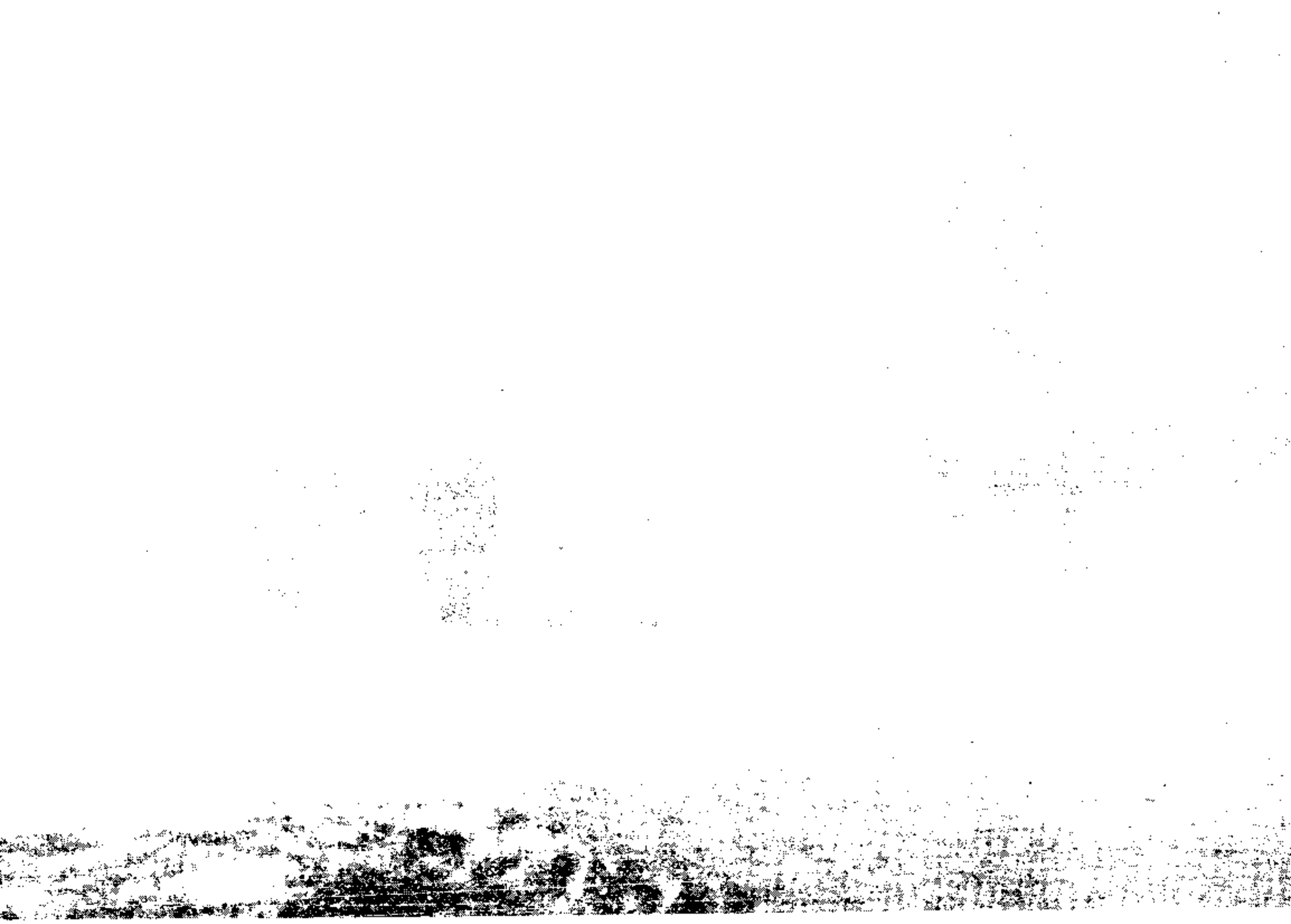

गाँव की ओर

एक आदिमजाति की कहानी

मुकुल गुप्त

शान्तिगढ़ को आज भी पश्चिम बंगाल का एक सामान्य गाँव नहीं कहा जा सकता !

किन्तु वह यह दर्जा पाने के लिए जी-जान से कोशिश कर रहा है। उसे अपने नाम पर गर्व है। बंगला का हिन्दी रूपान्तर किया जाए तो इसे 'शांति का किला' कहा जाएगा, पर यथार्थ में ऐसा नहीं है। फिर भी यह नाम उस प्रयोग के मूलभूत विचारों का द्योतक है जो पश्चिम बंगाल के दक्षिण-पश्चिमी दायरे के अन्तर्गत चल रहा है।

यह प्रयोग एक ऐसे मनुष्य को सुधारने का प्रयत्न है जिसे अब तक उपेक्षित ही छोड़ दिया गया था। यह प्रयास उसका, उसकी बुद्धि का, उसके वातावरण का तथा उसके दृष्टिकोण का सुधार करने का है। जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में पूर्ण क्रान्ति लाने का प्रयास इसलिए किया जा रहा है कि उसका अनुशासनहीन तथा अनियमित जीवन से लगाव छुड़वा कर उसे समाज का एक उपयोगी अंग बनाया जाए। विनाश की ओर जाते हुए मनुष्य को बचाना कोई कम महत्त्वपूर्ण विकास कार्यक्रम नहीं है।

मेदिनीपुर ज़िले के झाड़ग्राम के लोधाओं की समस्या समाज तथा प्रशासन दोनों के लिए लम्बे अर्से से एक जटिल समस्या बनी रही है। वे शान्ति तथा व्यवस्था का सदा विरोध करते रहे हैं। उनके अनियमित और अनियन्त्रित जीवन में दुःख व चिन्ताओं का कोई अन्त नहीं था। जंगलों में रहने के कारण जब कभी भी किसी ने उनको अवांछनीय प्रवृत्तियों से बचाने का प्रयत्न किया वह सदैव असफल ही रहा। उन्होंने प्राचीन काल से चली आ रही रूढ़ियों को छोड़ने से सदा इंकार किया।

इनको नियन्त्रण में लाने के लिए 'अपराधी आदिम जाति कानून' की धाराओं को लागू किया गया पर तो भी कुछ परिणाम न निकला। उन्हें जेल जाने का भय नहीं था। नियन्त्रित जीवन का विचार-मात्र ही उनकी बुद्धि से परे की चीज़ थी। वर्षों के अनुभव से अधिकारी इस निर्णय पर पहुँचे कि ऊपरी उपचार से कुछ काम न चलेगा। उन्हें अनुशासन में रखने के लिए उनकी अन्दरूनी बीमारी की जड़ पकड़नी होगी।

लोधा लोगों का वर्तमान तो अन्धकारमय है, पर उन्हें अपने भूतकाल पर गर्व है। उनका दावा है कि वे एक प्राचीन अनार्य जाति––सावरा जाति––के वंशज हैं जिनका जीवन शिकार पर आधारित था। वे उड़ीसा से मेदिनीपुर आए थे। कहा जाता है कि उड़ीसा में एक ब्राह्मण द्वारा उनकी सम्पत्ति तथा उनके देवता का हरण किए जाने पर वे मेदिनीपुर में आ बसे।

वे जब पहले-पहल मेदिनीपुर आए, तब बहुत खुश हुए। वे जंगल-प्रेमी थे और यहाँ जंगल ही जंगल थे। किन्तु जंगलों के काटे जाने से उन पर संकट आ पड़ा था। उनकी जीविका का साधन जाता रहा। उन्हें दूसरी जीविका की खोज करनी पड़ी। किन्तु वे अपने से अलग दूसरी दुनिया को जानते ही न थे। अब उन्हें जीवित रहने के लिए संघर्ष करना पड़ा। उनका शान्तिमय जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। सामाजिक विघटन तथा आर्थिक स्थिरता विरोधी शक्तियों से छिन्न लोधा लोग असहाय हो गए।

इन भोले-भाले लोगों पर चारों ओर से विघटन जैसी आपत्तियाँ आ गईं। इनमें दरिद्रता बढ़ी। अक्सर उन्हें भूखों रहना पड़ा। जंगल से इकट्ठी

की गई जड़ी-बूटियों से ही उन्होंने पेट भरा। भूखे लोगों को कानून का ध्यान नहीं रहता। ये लोग भी चोरी, डाके जैसे समाज-विरोधी कार्यों में जुट गए। कस्बे के लोगों की लालची वृत्ति के कारण इनकी स्थिति और भी बिगड़ती गई।

लोधा जाति के कुछ लोग मजदूरी का काम करने के लिए कस्बे में आ गए। उन्हें गणित नहीं आता था। वे अपनी मजदूरी को जाँच नहीं सकते थे। बहुधा उन्हें बिना मजदूरी के ही रह जाना पड़ता था। इसका यदि उन्होंने कभी विरोध भी किया तो उन पर चोरी आदि के झूठे आरोप लगा दिए जाते। वे बहुत अधिक बदनाम थे ही। इनको और बदनाम करने के लिए कस्बे के लोग तुरन्त इसकी आड़ ले लेते थे।

ऐसा था लोधा लोगों का भाग्य और दुःखमय जीवन। नारकीय घृणा तथा उपेक्षा और अविश्वास तथा सन्देह के वातावरण में इनका जीवन अत्यन्त संकटपूर्ण हो गया था। इन पर लागू होने वाले कानून सज़ा देने वाले ही थे, सुधारात्मक नहीं। इन कानूनों से इनका जीवन और भी संकटमय हो गया। इनको हार्दिक सहानुभूति की आवश्यकता थी। इनकी समस्या का एकमात्र हल यही था कि उन्हें सहानुभूतिपूर्ण वातावरण में मैत्रीपूर्ण ढंग से फिर बसाया जाए।

किन्तु इन्हें फिर से किस प्रकार बसाया जाए? भिन्न-भिन्न मत थे। क्या इन्हें एक ही स्थान पर सरकारी देखरेख में अच्छे-अच्छे घरों में बसाया जाए, अथवा क्या इन्हें फिर से उसी प्रकार के सामूहिक जीवन बिताने की सुविधा दी जाए जिससे इन्हें अलग कर दिया गया है? पहले हल का विचार त्याग दिया गया और यह ठीक भी था। लोधा लोगों को इसके लिए बाध्य करने से कि वे जंगलों में रहना छोड़ें और ईंट-सीमेंट के बने नए तरीके के मकानों में रहें, उनका जीवन और भी कष्टमय हो जाता और उनका विकास रुक जाता। इसमें उन्हें एक प्रकार से बन्दी बना कर रखे जाने की गन्ध आती।

उन्हें फिर से बसाए जाने की किसी भी योजना का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे यह अनुभव करें कि वे उसी स्थिति में हैं जिसमें उन्हें होना चाहिए, नए घरों का उनके साथ उतना ही सम्बन्ध है जितना कि उनका उनसे तथा उन पर कोई भी बात जबरदस्ती नहीं लादी जा रही। अगर ऐसा हुआ तभी उनमें धैर्य और सहानुभूति से ही उखड़ी हुई मानवता को फिर से स्थापित किया जा सकेगा। इसके लिए एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो निस्वार्थ भाव से अपने को इनके कल्याण कार्य में तन-मन-धन से खपा सके।

और ईश्वर ने ऐसा नेतृत्व उन्हें प्रदान भी कर दिया। गान्धीवादी परम्परा के एक पक्के अनुयायी श्री निर्मल घोष आदिम जातियों के बीच सेवा कार्य करने के लिए बिहार में मानभूम जा रहे थे। झाड़ग्राम में उनकी भेंट एक ऐसे दल से हुई जिसका उद्देश्य जैसा कि उन्हें मालूम हुआ, लोधा लोगों के विनाश को रोकना था। वह उनके शोषण की कहानियाँ सुन कर स्तब्ध रह गए। लोधाओं के कष्ट ने उनको अपनी ओर खींचा, उनके बीच सेवा कार्य करने की भावना उनके मन में उठी।

श्री घोष ने सुझाया—"इन लोगों से क्यों न इन्हीं के गाँव में मिला जाए और इन्हें सुधारने का प्रयत्न किया जाए?"

लोगों ने कहा—"ऐसा मत सोचिए। हम तो यही सोचते हैं कि आप इनके बारे में बहुत अधिक और अच्छी तरह जानते हैं। उन्हें सुधारा नहीं जा सकता। 'सुधार से परे!'—निराशा के इन शब्दों से उन्हें मानसिक क्लेश हुआ। उन्होंने सोचा—"संसार में यदि अन्य बहुत सी बिगड़ी बातें बाद में सँभाली जा सकती हैं, तो मनुष्यों को क्यों नहीं सुधारा जा सकता?"

२६ अगस्त, १९५३ को झाड़ग्राम के कुछ विद्यार्थियों के साथ श्री निर्मल घोष झाड़ग्राम सामुदायिक विकास खण्ड की बाहरी सीमा पर आकर्षक वातावरण में स्थित लोधाओं की एक बस्ती में पहुँचे। स्पष्ट ही वहाँ उनका स्वागत नहीं हुआ। उनको मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति की आँखों से सन्देह का भाव प्रकट हो रहा था। उन्हें सन्देह था कि सम्भवतः यह व्यक्ति उन्हें फँसाने आया है।

श्री निर्मल घोष ने उनसे बातचीत शुरू की। उनकी आवाज़ से दया और लगन के भाव टपक रहे थे। लोधा लोगों ने इससे पहले कभी इतने विनम्र शब्द नहीं सुने थे। उन्हें विश्वास न हुआ कि वे क्या सुन रहे हैं। किन्तु उन्होंने अपनी बात जारी रखी। उन्होंने कहा—"रहने-सहने का दूसरा तरीका और इससे अच्छा तरीका एक और है। आप लोग भी उसी तरह क्यों न रहें?" सुनने वाले सिर हिलाने लगे. इससे पहले वह कई दिनों तक उनको समझाते बुझाते रहे। यह पहला ही अवसर था जब लोधाओं ने नया जीवन बिताने के लिए सिर हिला कर अपनी स्वीकृति दी। बहुत बड़ी समस्या हल हो गई और लोधाओं में नवचेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

अब क्योंकि लोधा लोगों में जागृति हुई, पुनर्वास के एक निश्चित कार्यक्रम की आवश्यकता का अभाव पहले से अधिक

अनुभव किया गया। भाग्यवश, श्री घोष को नवयुवकों, ज़िले के कर्मठ मुख्य पुलिस अधिकारी, स्थानीय सब-डिविज़नल अफसर तथा झाड़ग्राम सामुदायिक विकास-योजना के प्रधान का सक्रिय सहयोग मिला। इन लोगों को हरिजन सेवक संघ, प्रो० पी० आर० सेन तथा प्रसिद्ध मानव विज्ञान-शास्त्री और गान्धी जी के निकटस्थ शिष्य प्रो० एन० के० बोस का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इन सब लोगों ने मिल कर एक योजना बनाई—लम्बी-चौड़ी नहीं बल्कि एक ठोस योजना।

१—इधर-उधर बिखरे लोधाओं को एक स्थान पर इकट्ठा करके उन्हें एक समाज का रूप दिया जाए और वे यह अनुभव करें कि उनका इस स्थान के साथ सम्बन्ध है।

२—वे मिलजुल कर अपने मकान बनाएँ, सड़कें बनाएँ, कुएँ खोदें तथा पशुशालाएँ बनाएँ ताकि ऐसे सामूहिक प्रयासों से उनमें एक समाज की भावना पैदा हो।

३—पहले उन्हें कृषि में लगाया जाए और बाद को ग्रामोद्योगों में।

४—उन्हें सामाजिक तथा अन्य प्रकार की शिक्षा दी जाए।

कार्यक्रम प्रस्तुत हुआ। लोधा लोग यह सब कुछ करने को तैयार थे। उनमें जो उत्साह और उमंग पैदा की गई थी, उसे कायम रखने के लिए उन्हें कुछ काम तुरन्त दिया जाना चाहिए था। भाग्यवश, मेदिनीपुर ज़िला बोर्ड के सड़क-निर्माण कार्य में से कुछ कार्य उनके लिए सुरक्षित कर दिया गया। लोधाओं ने सड़क बनाई। यह पहला काम था जो उन्होंने मिलजुल कर किया। उन्हें इस पर गर्व था और वे प्रसन्न थे। उनमें आत्म-विश्वास पैदा हो गया था।

इसी बीच मुख्य पुलिस अधिकारी ने साधारण लगान की दर पर एक स्थानीय ज़मीदार से १०० एकड़ भूमि प्राप्त कर ली जो २६ परिवारों को बसाने के लिए काफी थी। कार्य आरम्भ करने के लिए यह एक शुभ लक्षण था। पश्चिम बंगाल सरकार से मिले अनुदान से कार्यक्रम के अगुआ लोगों के साधनों में एक वृद्धि हुई।

अप्रैल १९५४ में कार्यक्रम आरम्भ हुआ। भूमि बहुत सूखी थी। इसके पहले इस भूमि में हल से एक भी बार जुताई नहीं हुई थी। इसके लिए बहुत अधिक पानी की आवश्यकता थी। इस भूमि की सिंचाई पड़ोस की एक नदी से की गई। भूमि में फसलें लहलहा उठीं। हवा से हिलती हुई धान, गेहूँ, दाल तथा चना की बालों ने परिश्रमी लोधाओं में अपार प्रसन्नता पैदा कर दी।

दूसरी समस्या थी आवास की। लोधा लोग पत्तियों की झोंपड़ियों में और बहुधा खुले मैदान में रहा करते थे। मकान से उन्हें केवल आराम ही नहीं मिलेगा बल्कि उनकी रक्षा भी होगी। और इसलिए, प्रत्येक परिवार को मकान बनाने के लिए एक-एक प्लाट दिया गया। किन्तु मकान आयोजित ढंग से बनाए जाने चाहिएँ। मकान इस प्रकार न बनाए जाएँ कि बहुत अधिक घचापची हो जाए। प्रत्येक मकान के मध्य में मिट्टी की दीवारों से घिरा १४'×९' फुट का एक कमरा होना चाहिए जिसमें कम से कम तीन दरवाजे और खिड़कियाँ हों। मध्य स्थित कमरे के चारों ओर ६ फुट का बरामदा होना चाहिए। छत घास-फूस की हो और प्रत्येक मकान के सामने सागसब्जी बोने के लिए भूमि रहे।

मकानों की बनावट का आयोजन इस प्रकार से किया गया है कि उनकी सभी ऋतुओं में रक्षा हो सके। वातावरण ग्रामीण है। सभी मकान आपस में एक दूसरे को काटने वाली तीस फुट लम्बी सड़कों के किनारे-किनारे ही हैं। जहाँ सड़कें मिलती हैं, वहाँ 'सामुदायिक भवन' है जिसमें बीज तथा औजारों का संग्रह रखने के साथ-साथ सामुदायिक बैठकों के लिए भी व्यवस्था रहेगी।

सामुदायिक जीवन स्थापित करने के प्रयास सफल हुए। उन्हें अपनी व्यवस्था स्वयं करने का शिक्षण दिया जा रहा है। निस्संदेह यह एक कठिन काम है क्योंकि अभी तक इनका दृष्टिकोण व्यक्तिगत ही रहता आया है। उनमें जीवन का महत्व और गम्भीरता के भाव पैदा करने के लिए एक मंत्री परिषद स्थापित की गई है। यह मंत्री परिषद् सलाहकार तथा कार्यकारिणी दोनों है। इसमें विश्वास अथवा अविश्वास के प्रस्ताव का प्रश्न नहीं पैदा होता। इस के निर्णय अन्तिम हैं। श्री निर्मल घोष से बहुत ही कम मामलों में अपील की जाती है। लोग उन्हें विभिन्न नामों से जैसे भाई, चाचा, पिता तथा बेटा कहकर पुकारते हैं।

मंत्रियों की नियुक्ति का ढंग मनोरंजक है। सुरेन सावरा जो असाधारण सूझ-बूझ और विद्वता के व्यक्ति हैं, मुख्य मन्त्री हैं। तीस वर्षीय बुध जिन्होंने पहले बड़े-बड़े अपराध किए और बहुधा जेल जाते रहे, कानून एवं व्यवस्था मंत्री हैं। साहसी तथा शान्त गोलक न्याय एवं कृषि मन्त्री हैं। सर्वेश्वर जो अपनी आयु तो नहीं बता सकते पर अपने को उस समय के समकालीन बताते हैं जबकि पिछली बार तूफान आया था, विधान सभा के अध्यक्ष हैं। लोधाओं के पास ऐसा कोई अच्छा प्रवक्ता नहीं है जो दर्शक को यह बता सके कि यह सब किस प्रकार हुआ। प्रत्येक मंत्री को अपने पद का गर्व है और वह अपने उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक है।

[शेष पृष्ठ ३० पर]

लकड़वास गाँव में इस परिवार ने सड़क के लिए अपनी भूमि सहर्ष दे दी

४३ लाख लोगों द्वारा श्रमदान

राजस्थान में २६ मई से ६ जून तक हर साल की तरह इस बार भी श्रमदान पखवाड़ा मनाया गया। श्रमदान पखवाड़े में राजस्थान के गाँवों का दौरा करने पर सबसे अधिक ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट हुआ कि सर्वसाधारण के प्रयत्न से अब सुखद भविष्य के बीज, जिनके फलने-फूलने की अभी तक सिर्फ आशा ही थी, कुसमुसा रहे हैं, जड़ पकड़ रहे हैं और बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस पखवाड़े में राजस्थान के गाँव-गाँव में लोग पीने के पानी के कुएँ, स्कूलों की इमारतें और मनोरंजन-केन्द्र, पक्की सड़कें, नए तालाब, पोखर और सिंचाई के बम्बे बनाने में बड़े उत्साह से हिस्सा लेते हुए दिखाई पड़े। गाँवों के इस पुनर्निर्माण में उनका आपसी सहयोग दर्शनीय था।

काम आसान नहीं था। चिलचिलाती धूप, धधकती लू, गरम रेत, कँटीली झाड़ियाँ, नीची पहाड़ियाँ और तपती हुई सड़कें और पगडंडियाँ—यह सभी गाँववालों के धैर्य और लगन की परीक्षा ले रही थीं। लेकिन, इन सब की परवाह न करते हुए गाँवों के बूढ़ और जवान, आदमी और औरतें, किसान और ज़मींदार, महाजन और पुजारी, सभी पंचायतों द्वारा निर्धारित ग्राम विकास कार्य पूरा करने के लिए जुट गए।

गाँव-गाँव में लोगों की लगन, मेहनत और बलिदान की उत्साहवर्धक कहानियाँ सुनने को मिलीं।

जयपुर से लगभग १० मील दूर साँगानेर सामुदायिक विकास खण्ड में बेलवा नाम का एक छोटा-सा गाँव है।

वहाँ ढोल की ताल पर, हर रोज़ ४०० गाँव वाले एक तलई पर बन्द बाँधने के काम में जुटे रहे। ७० साल का बूढ़ा ढींकला फावड़ा नहीं चला सकता था, लेकिन वह भी बेकार नहीं बैठा। राजपूती ढंग से अपनी सफेद दाढ़ी बाँधे हुए वह किनारे पर बैठा ढोल बजाता रहा और उसकी स्फूर्तिदायक लय से काम करने वालों में और काम करने का उत्साह भरता रहा। श्रमदान में उसका यही योग था, जो किसी भी प्रकार नगण्य नहीं कहा जा सकता।

इसी खण्ड के एक और गाँव की कहानी दूसरी ही है। राठौर राजपूतों का गाँव घुनेर झगड़ों और लड़ाकू दलों के कारण प्रसिद्ध रहा है। सिर्फ दो हफ्ते पहले ही एक मामूली से झगड़े पर दोनों विरोधी दलों में लाठियाँ और भाले खिंच गए थे और अगर ग्राम सेवक चतुराई से स्थिति को काबू में न लाता, तो न जाने क्या हो जाता। वे लोग अब दो ग्राम योजनाओं पर काम कर रहे हैं, पुराने तालाब के लिए पानी का एक नाला खोदना और नए तालाब की खुदाई करना और बन्द बाँधना। दोनों दलों में होड़ लग गई है, कौन अच्छा काम करता है। रात चढ़ आती है, लेकिन वे लोग छोटी-छोटी लालटेनों की मदद से काम में जुटे रहते हैं।

उदयपुर डिवीज़न में राजसमद सामुदायिक विकास खण्ड में बदरडू एक छोटा-सा गाँव है। इसमें लगभग ४० परिवार रहते हैं। यहाँ के निवासियों ने हाल में दो पहाड़ियों के किनारे-किनारे ४ फुट गहरी एक नाली खोदी है। पहाड़ियों पर से बरसात का पानी नाली के द्वारा, गाँव के तालाब में लाया जाएगा। पहले यह तालाब गर्मियों में एकदम सूख जाता था और गाँव के पशुओं को पानी पिलाने मीलों दूर ले जाना पड़ता था।

उदयपुर में भीलों के इलाके में भी बड़ी उन्नति हुई है। अब भील लोग भी पानी पीने के लिए कुओं और जानवरों के लिए तालाबों तथा स्कूल की इमारतों आदि की व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील हैं। वे अपनी उन्नति के लिए पूरी कोशिश कर रहे हैं। आज भील लोग पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हैं। रियासती ज़माने में कभी-कभी उन्हें बेगार देनी पड़ती थी। अब कोई उनसे बेगार नहीं ले सकता। पहले लगान देने के लिए भीलों को गाँव के महाजनों पर आश्रित रहना

नाथद्वारा से १० मील दूर एक गाँव में वर्षा का पानी रोकने के लिए बन्द बाँधा जा रहा है

उदयपुर के निकट लकड़वास गांव में स्त्री-पुरुषों ने दिन-रात काम करके ७ मील लम्बी सड़क को चौड़ा किया

पड़ता था, लेकिन आज २० प्रतिशत किसान भी गाँव के महाजनों पर आश्रित नहीं हैं। सभी किसानों की हालत पहले से बहुत सुधर गई है और अधिकांश किसान अब कर्ज के भार से नहीं दबे हैं। किसान अब सुखी हैं, अतः वे खुशी से श्रमदान में हाथ बँटाते हैं।

इसी प्रकार उदयपुर की मौला तहसील के अमली गाँव के किसान पानी के अभाव को दूर करने के लिए एक तालाब का बाँध बना रहे हैं। इस तालाब के भर जाने से वहाँ के जानवरों को पानी की सुविधा हो जाएगी और उसके पास ही पीने के पानी के लिए भी कुआँ खोदा जा सकेगा।

इस वर्ष श्रमदान पक्ष में ७० लाख रुपए की लागत का काम करने का लक्ष्य रखा गया था। यह काम ५६ विकास खण्डों के अधीन राज्य के ६,७२० गाँवों के ४२ लाख १५ हजार आदमियों ने किया। श्रमदान का काम केवल विकास खण्डों में ही किया गया। श्रमदान द्वारा शुरू किए कामों को पूरा करने के लिए खण्डों में थोड़ी बहुत धन की व्यवस्था भी की गई है।

सरकार ने कार्यक्रम का चुनाव ग्रामवासियों पर ही छोड़ दिया था। जिस काम को ग्रामवासी आवश्यक समझें, उसे कर सकते हैं। ग्रामवासियों की सुविधा के लिए सरकार ने कुछ कामों की सूची दी, जिसमें स्वच्छ पानी के कुएँ, स्कूल की इमारतें, तालाब, मनोरंजन केन्द्र, गाँव की सहायक सड़कें तथा छोटी पुलियाँ बनाना आदि काम सुझाए गए थे। इन कामों के लिए जहाँ आवश्यक है, वहाँ राज्य द्वारा आर्थिक और प्राविधिक सहायता की व्यवस्था की गई।

ग्रामवासियों द्वारा किए जाने वाले रचनात्मक कार्यों में प्रतियोगिता के लिए, खण्ड के सर्वश्रेष्ठ गाँव, राज्य के तीन सर्वश्रेष्ठ खण्ड, और सर्वश्रेष्ठ जिले के लिए राज्य द्वारा पुरस्कार घोषित किए गए। इसी प्रकार कार्यक्रमों में लगे सरकारी कर्मचारियों जैसे ग्रामसेवक और गाँव के कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन देने के लिए उनका वेतन अग्रिम बढ़ाने की व्यवस्था की गई।

जादुई छड़ी

आर० पी० सिन्हा

आखिरकार कुल्लू जब घर लौटा तो उसने फैसला कर लिया कि गाँव के हरेक आदमी को वह अच्छी तरह सबक सिखाएगा। उसके छोटे से गाँव का नाम था पिस्का जिसमें मुश्किल से सौ झोंपड़ियाँ होंगी—उनको झोंपड़ियां कहना भी ठीक नहीं है, वास्तव में वे छप्पर ही थे। गाँव के सभी निवासी आदिवासी थे। गाँव में पहुँचने के लिए कोई सड़क नहीं थी। राँची नगर से मुख्य सड़क पर पूर्व की तरफ चार मील चलने के पश्चात गाँव को पहुँचने के लिए एक पगडंडी पर चलना पड़ता था। गाँव के चारों ओर बेकार भूमि थी जो जँगली झाड़ियों और वृक्षों से भरपूर थी। गाँव में मलेरिया का बोलबाला था। दरिद्रता का यह हाल था कि गाँव का कोई ही परिवार होगा जिसे दो वक्त भरपेट खाना नसीब होता हो। कुल्लू का विवाह हुआ और वह अपनी पत्नी को घर लाया। कुल्लू स्वभाव से निखट्टू था—पत्नी के आ जाने से उसके परिवार का खर्चा और बढ़ गया। इसलिए वह अपने भाइयों की आँखों में खटकने लगा और उन्होंने उसे कभी चैन की नींद न सोने दिया। उसने राँची के एक व्यापारी के पास जाकर नौकरी कर ली। वह व्यापारी उसे अपने साथ कलकत्ता ले गया।

सन् १९५० की शरद ऋतु में कुल्लू कलकत्ता पहुँचा। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि किसी तरह वह अपने भाइयों को सबक सिखाएगा। उसने दिल तोड़ कर परिश्रम किया और थोड़े ही समय में काफी तरक्की कर ली और पैसा भी कमा लिया। जब उसके पास ३०० रुपए जमा हो गए तो वह रुपया लेकर अपने गाँव लौटा। वह पाँच साल बाद अपने गाँव लौट रहा था। जब वह बस से सड़क के उस किनारे पर उतरा, जहाँ से उसके गाँव की पगडंडी शुरू होती थी, तो उसका दिल बेहद धड़क रहा था। परन्तु यह क्या? उसकी चिर-परिचित पगडंडी अब वहां नहीं थी। उसके स्थान पर अब बीस फुट चौड़ी सड़क थी जिसपर मोटरें आ-जा सकती थीं। इस सड़क का जहाँ मुख्य सड़क से मेल होता था वहाँ एक खम्भा था जिसपर मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—"यह सड़क पिस्का को जाती है।" उसे लगा कि वह संकेत-चिन्ह उस पर हँस रहा है। उसने झुक कर अपने जूते की चमक देखी और एक नज़र अपने भड़कीले कपड़ों पर डाली। रात को उसने जूतों पर पालिश की थी—इस पालिश पर जो धूल जम गई थी, उसने उसे झाड़ दिया। सफर के कारण कपड़े मुस गए थे और धूल के कारण कुछ मैले भी हो गए थे। जूता तो झाड़ने से चमक उठा, इन कपड़ों के मैल का क्या करे—वह यही सोचने लगा। कोई और हल नज़र न आता देख उसने अपने आप को तसल्ली दी—"चिन्ता काहे की है,—मेरे यह कपड़े भी गाँव में सबसे अच्छे होंगे।" उसने अपने बटुए में पड़े हुए दस-दस के नोटों को गिना और उसकी छाती गर्व से फूल उठी। ज्यों-ज्यों वह गाँव की तरफ बढ़ा उसने देखा कि वहाँ का सारा नक़शा ही बदल गया था। वह सोचने लगा, कहीं वह गलत जगह पर तो नहीं पहुँच गया या किसी हरफनमौला ने अपना कमाल दिखाया है। यह फैसला करने के लिए कि वह ठीक सड़क पर ही है, वह क्षण भर रुका और सोचने लगा। निश्चिन्त हो कर वह आगे बढ़ा—उसकी आँखें अब उन जँगली झाड़ियों को ढूँढ़ रही थीं, जो पहले गाँव के चारों ओर थीं। परन्तु झाड़ियाँ नदारद थीं और उसे गाँव साफ दिखाई पड़ रहा था। बेकार भूमि पर भी अब खेती हो रही थी—फसलें और सब्ज़ियाँ उगी हुई थीं। स्त्री-पुरुष काम में लगे हुए थे। खेत के उस पार एक ईंटों का भट्ठा था, जिसमें कई औरतें और मर्द काम कर रहे थे। ज्यों ही वह खेत के पास पहुँचा वहाँ काम करने वाले लोग उसे पहचान कर उसका स्वागत करने दौड़े। उसका स्वागत करने वाले लोगों में स्वयं उसके भाई, भावजें और उसकी पत्नी थी। उसके भाइयों ने उसे गोदी में भर लिया। उसकी सीधी-सादी नवयुवती आदिवासी पत्नी भी अपने उल्लास को काबू में न रख सकी और उसने उसकी पीठ के पीछे से उछलकर अपने पति के गाल को चूम लिया। कुल्लू को परेशानी के कारण यह समझ न आ रहा था कि वह क्या करे। गाँव का हरेक व्यक्ति खुश नज़र आता था, सब स्वस्थ थे और कपड़े भी सभी के साफ़-सुथरे थे। कलकत्ता की धुली हुई जिस सफेद कमीज़ पर उसे गर्व था, वह गाँववालों के उजले कपड़ों के आगे पानी भरती थी। कुल्लू अपने घर गया—उसका घर अब मिट्टी की बनी हुई पुरानी झोंपड़ी नहीं था। उसके स्थान पर अब ईंटों का बना हुआ खुला मकान था। इसके दरवाज़े और खिड़कियाँ सोच-समझ कर बनाई गई थीं—तभी तो हवा और रोशनी की बिलकुल कमी नहीं थी। सप्ताह में दो बार पैंठ लगती

थी। शाम को उसकी बहन पेंठ में पाँच रुपये का माल बेच कर लौटी। वह सुबह सब्ज़ी, अंडे और साबुन लेकर मण्डी गई थी--सारा सामान उनके घर का ही था, बाहर से उन्होंने कोई चीज़ बेचने के लिए नहीं ली थी। कुल्लू के घर वालों ने अब अच्छी नस्ल की मुर्गियाँ भी पाल ली थीं।

अपने गाँव का भाग्य इस प्रकार बदला देख कुल्लू भौंचक्का रह गया। उसने अपने भाई से पूछा--"मुझे यह सब एक पहेली-सी लग रही है। गाँव का बच्चा-बच्चा अब खुश और सुखी दिखाई पड़ रहा है। जिन अन्धकारमय झोंपड़ियों में हम रहा करते थे, अब नहीं हैं--उनके स्थान पर ईंटों के बने खिड़कियों वाले हवादार मकान हैं। मलेरिया का भी कोई रोगी नज़र नहीं आता। बेकार भूमि पर भी अब खेती होने लगी है। सब से महत्वपूर्ण बात तो यह है कि तुम सब को काम मिल गया है। अब काम की तलाश में मुझे दूर कलकत्ता जैसे शहर में जाने की आवश्यकता नहीं।"

हँसते हुए उसके भाई ने कहा--"तुम्हें हैरानी हुई है। यह सब हमने खुद ही किया है। हमने उन सब स्थानों को साफ कर दिया जहाँ दलदल में मलेरिया के मच्छर पनपते थे। बेकार भूमि पर हमने खेती की। यह प्रवेश सड़क भी हमने ही बनाई थी और यह सहकारी भट्ठा भी हम सब लोगों की मिली-जुली मेहनत का फल है।"

कुल्लू को अपने भाई की बातों पर भला क्यों विश्वास आता। वह बोला--"क्यों गप मारते हो। जिस मिट्टी के तुम सब पुतले हो, क्या मैं नहीं जानता। कुल पाँच साल पहले ही तो मैं आप लोगों के साथ था--तब तो आपको कभी सपने में भी इन झाड़ियों, इस बेकार भूमि और सड़क का ख्याल नहीं आया था जिसका अब तुम बड़े चाव से जिक्र कर रहे हो। मुझे तुम इसका रहस्य बताओ। इस सबके पीछे तो किसी बड़े जादूगर का हाथ नज़र आता है।"

लल्लू ठट्ठा मारकर हँस पड़ा और बोला--"कुल्लू, जादू की बात छोड़ो--यहाँ जादू का नाम लेना गुनाह है। हमें तो यह सब करने के लिए प्रसाद जी ने प्रोत्साहन दिया है। उन्हें हम भाई साहब कहते हैं।"

इस बार कुल्लू की हँसने की बारी थी। वह ज़ोर से बोला--"अब समझा, यह प्रसाद भाई ज़रूर कोई बड़े जादूगर होंगे। मैं शर्त लगा सकता हूँ।"

अगले दिन प्रसाद भाई गाँव में पहुँचे। उनके मुख पर एक चिर-स्थायी मुस्कान थी और वह हरेक व्यक्ति से बड़े प्रेम से मिलते थे। गाँव वाले उन्हें अपने से भिन्न नहीं मानते थे और सभी जगह उनकी देवता के समान पूजा होती थी। वह प्रोजैक्ट एक्जैक्टिव अफसर थे। उनके साथ जो नवयुवती थी वह कुमारी गाँगुली हैं--लेडी डाक्टर। प्रसाद साहब पुरुषों से बातें करने लगे और कुमारी गाँगुली महिला रोगियों को देखने में व्यस्त हो गईं। जब वापस लौटने के लिए प्रसाद जी और कुमारी गाँगुली अपनी मोटर में जा बैठे तो गाँव का एक नवयुवक मोटर के पास हाथ जोड़ कर जा खड़ा हुआ।

प्रसाद ने सदा की तरह नम्र स्वर में पूछा--"क्या बात है भइया?"

"हुजूर......" आदिवासी नवयुवक ने कहना शुरू किया। प्रसाद ने बीच ही में टोकते हुए कहा--"हुजूर न कहो, मुझे भाई कहो।"

"अच्छा, भाई साहब," उस नवयुवक ने कहा--"आप मुझे एक चीज़ भेंट में दें।"

"अवश्य, आपको अवश्य मिलेगी, कहिए।"

"मुझे बस एक बेंत की छड़ी चाहिए--और कुछ नहीं चाहिए।"

प्रसाद और गाँगुली दोनों ही इस विचित्र प्रार्थना को सुनकर चकित हो उठे।

प्रसाद बोले--"ज़रूर, यह आपको अवश्य मिलेगी, परन्तु कृपया यह तो बताइए कि यह छड़ी तुम्हें चाहिए क्यों?"

"हुजूर...माफ कीजिए, भाई साहब! यह मेरे गाँववाले सब के सब नासमझ हैं। अब तक कोई भी आपको पूरी तरह नहीं समझ सका है। मैं पाँच साल कलकत्ता रहने के बाद हाल ही में गाँव लौटा हूँ। यह सब सुधार देखकर मुझे यह जानते देर न लगी कि आप जादूगर हैं और आपके हाथ में छड़ी देखकर तो मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया है कि यह जादू की छड़ी है।"

प्रसाद और गाँगुली इस बात को सुनकर ठहाका मार कर हँस पड़े। उनके हँसने की आवाज़ सुनकर वहाँ भीड़ जमा हो गई। प्रसाद ने उस आश्चर्य चकित आदिवासी नवयुवक को इस प्रगति का रहस्य समझाया--यह रहस्य है अपनी मदद खुद करना।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह नवयुवक और कोई नहीं बल्कि कुल्लू था जो गाँववालों को सबक सिखाने के ख्याल से पाँच साल बाद अपने गाँव लौटा था।

राजस्थान की एक प्रेम-गाथा

जैसलमेर से कुछ मील की दूरी पर काक नाम की एक नदी बहती है। नदी के दूसरे पार एक छोटे से मकान के खण्डहर हैं। इस मकान को लोग 'मूमल की मेड़ी'. के नाम से पुकारते हैं। यह खण्डहर ७०० साल या उससे भी पहले की एक दुखान्त प्रेम-गाथा की याद दिलाते हैं। अरब में लैला-मजनूं और शीरीं-फरहाद की कहानियों को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान राजस्थान में इस प्रेम-गाथा को दिया जाता है। सिन्धी कवियों की कविताओं के अनुसार यह कहानी इस प्रकार है :

बरसात की अन्धेरी रात में राजकुमार महेन्द्र अपने घोड़े को सरपट दौड़ाए अपने गाँव अमरकोट की तरफ जा रहा था। अभी रास्ता आधा ही तय हुआ था कि वर्षा की बौछाड़ शुरू हो गई। वर्षा के पानी से नदी में बाढ़ आ गई और नदी का पानी किनारों को तोड़ता हुआ आगे बढ़ने लगा। राजकुमार के पास यह सब सोचने के लिए समय नहीं था—उसने अपनी छोटी रानी को मिलने का समय दिया हुआ था। उसने बाढ़ उतरने की प्रतीक्षा नहीं की और घोड़े को एड़ लगाई। घोड़ा तीर की तरह बहते हुए पानी को चीरता हुआ नदी के दूसरे किनारे पहुँच गया। पाँवर राजपूत लड़की मूमल अपने घर के छज्जे पर खड़ी हुई राजकुमार के इस साहसपूर्ण कार्य को देख रही थी। नदी में इतनी बाढ़ आई हुई थी कि बड़े-बड़े हाथी भी उसमें डूब जाते। इस प्रकार एक घोड़े पर नदी पार करते उसने पहले किसी को नहीं देखा था। मूमल अपने कमरे से नीचे उतर कर आई और राजकुमार के इस साहसपूर्ण कार्य की प्रशंसा करने के लिए नदी की तरफ बढ़ी।

महेन्द्र की नज़र अचानक मूमल पर पड़ी और उसके अगाध सौन्दर्य को देखकर वह मूर्च्छित हो गया। मूर्च्छित राजकुमार को मूमल अपने घर में ले आई। होश में आने पर राजकुमार ने अपने आपको एक अपूर्व सुन्दरी की भुजाओं में पाया। राजकुमार को मूमल से प्रेम हो गया और उसने हर रोज़ रात के समय उसे मिलने का वचन दिया।

काफी समय तक यह सिलसिला चलता रहा। राजकुमार हर रोज़ रात को मूमल के पास आता और कुछ घण्टे वहाँ गुज़ारने के बाद अपने गाँव अमरकोट को लौट जाता।

राजकुमार को मिरासियों से गाना सुनने का बहुत शौक था। इसलिए महेन्द्र जब भी मूमल की मेड़ी पर आता, एक मिरासी उसका मनोरंजन करने के लिए अवश्य वहाँ उपस्थित रहता।

राजकुमार महेन्द्र के वृद्ध और अन्धे पिता को यह चिन्ता खाए जाती थी कि राजकुमार की दोनों रानियों से कोई सन्तान नहीं थी। महेन्द्र के कुछ मित्रों ने एक दिन उसके पिता से शिकायत की कि महेन्द्र रातों महल से ग़ायब रहता है। उन्हें यह भी बताया गया कि मूमल के घर से लौटते समय महेन्द्र बिला नाग़ा 'हनकदा' नदी में स्नान किया करता है। यह नदी लौटते समय रास्ते में पड़ती थी। उन दिनों लोगों में यह विश्वास था कि शरद पूर्णिमा की रात

की अगर कोई अन्धा व्यक्ति इस नदी के पानी को अपनी आँखों पर लगाए तो उसकी आँखों की रोशनी लौट आती है। शरद पूर्णिमा की रात को जब महेन्द्र मूमल के घर से लौट कर सो रहा था तो उसके अन्धे पिता ने उसकी लटों से टपकते हुए पानी को अपनी आँखों पर मला। फलस्वरूप उसकी आँखों की रोशनी लौट आई।

भाग्य की बात है कि मूमल ने उससे अगली रात को अपनी छोटी बहन सूमल को राजकुमार के दर्शन करवाने का वायदा कर लिया था। परन्तु महेन्द्र की आज्ञा थी कि उसकी उपस्थिति में मिरासी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वहाँ न आए, इसलिए सूमल ने मिरासी का वेश धारण कर लिया।

रात के अन्धेरे में राजकुमार महेन्द्र राह से भटक गया और नियत समय पर मूमल के पास न पहुँच सका। इधर मूमल और सूमल घंटों इन्तज़ार करने के बाद निराश होकर इकट्ठी सो गईं।

गलत रास्ते पर कुछ देर भटकने के बाद महेन्द्र को अपनी गल्ती का आभास हुआ। उसने सही रास्ता ढूंढ निकाला और आधी रात के समय मूमल के घर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि मूमल एक नवयुवक मिरासी के साथ सो रही है। उसके गुस्से का कोई ठिकाना न रहा और मूमल के जगाए बिना वह निराश होकर अपने गाँव वापस लौट गया। लौटते समय अपनी छड़ी वह मूमल के घर ही छोड़ गया।

सवेरे नींद खुलने पर मूमल ने राजकुमार की छड़ी देखी। उसे सारी बात समझते देर न लगी और उसका हृदय भय से काँपने लगा।

उसके बाद मूमल मेड़ी में बैठी अपने रूठे हुए प्रीतम के लौट आने की राह देखा करती। राजकुमार की राह देखते-देखते उसकी कमल जैसी आँखें पथरा गईं परन्तु पत्थर-दिल राजकुमार न लौटना था न लौटा। मूमल इस आघात को अधिक दिन न सह सकी और जल्दी ही वह इस संसार से चल बसी।

अधिक से अधिक जोत कितनी हो ?

केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्री श्री अजित प्रसाद जैन ने ९ अप्रैल १९५६ को लोकसभा में कहा कि हर व्यक्ति के अधिकार में अधिक से अधिक कितनी जोत होनी चाहिए, भारत सरकार जल्दी ही इस बारे में अंतिम निर्णय करने वाली है। उन्होंने यह भी कहा कि "कुछ सदस्य इस परिमाण निर्धारण के विरुद्ध हैं पर मैं इसके लिए बराबर प्रयत्नशील हूँ और चाहता हूँ कि यह परिमाण काफी कम होना चाहिए।"

देश में योजना की प्रगति के साथ जोत का परिमाण नियत करने का प्रश्न भी ज़ोर पकड़ गया है। खेती लायक ज़मीन देश में परिमित है इसलिए यदि निजी जोत की सीमा निश्चित नहीं की जाती तो असंख्य व्यक्तियों की स्थिति खतरे में पड़ जाएगी।

१९३८ में राष्ट्रीय योजना समिति के सामने जोत का परिमाण निश्चित करने का प्रश्न उठाया गया था। डा० राधाकमल मुखर्जी ने अपने 'मेमोरेंडम आन लेंड पालिसी' में कहा—"एक किसान के पास अधिक से अधिक कितनी ज़मीन हो यह भी निश्चित हो जाना चाहिए। किसान के परिवार को राज्य की ओर से कर्ज़ और किन्हीं करों से मुक्त रखना तभी न्यायोचित कहा जा सकता है जबकि उस पर यह पाबन्दी हो कि वह भी इतनी ज़मीन न रख सके कि इसकी जुताई-बुआई के लिए उसे स्थायी रूप में दूसरे मजदूर की आवश्यकता पड़े।"

प्रो० के० टी० शाह ने तो अपने 'प्राब्लम आफ दि वेस्ट लैंड" शीर्षक नोट में यहाँ तक लिखा है कि खेती योग्य बनाई हुई बेकार ज़मीन में से प्रति किसान परिवार को कितनी ज़मीन मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा है—"ऐसे क्षेत्रों में जहाँ की ज़मीन खेती योग्य बन गई है, प्रति परिवार (जिसके पास खेती के आवश्यक औज़ार, एक जोड़ी बैल और कम से कम एक गाय हो) के लिए २५ एकड़ ज़मीन की सीमा नियत की जा सकती है।"

कांग्रेस की कृषि सुधार समिति (१९५०) ने भी जोत का परिमाण नियत करने के बारे में विचार किया था और सिफारिश की थी कि "किसी भी व्यक्ति के पास बहुत अधिक ज़मीन नहीं रहने देनी चाहिए। एक व्यक्ति के लिए इसका अधिकतम परिमाण निश्चित हो जाना चाहिए और हमारे विचार में एक व्यक्ति के अधिकार में आर्थिक दृष्टि से आवश्यक ज़मीन के तीन गुने से अधिक ज़मीन नहीं होनी चाहिए।"

पर इस प्रश्न को सबसे अधिक महत्व योजना आयोग ने दिया और इस पर विस्तार से विचार किया। आयोग ने कहा कि—"हम इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं कि एक व्यक्ति के पास अधिक से अधिक कितनी ज़मीन हो इसकी सीमा निश्चित कर दी जाए।"

इस बारे में आयोग ने आगे कहा है—"हर राज्य को अपनी स्थिति देख कर यह सीमा निश्चित करनी चाहिए। फिर भी मोटे तौर से आर्थिक दृष्टि से आवश्यक ज़मीन को तीन गुनी ज़मीन की सीमा निश्चित करने की कांग्रेस कृषि सुधार समिति की सिफारिश मानना ठीक होगा।" वैसे तो परिवार के लिए ज़मीन की सीमा स्थानीय स्थिति के अनुसार निश्चित होनी चाहिए पर यह प्रति हल या परिवार के काम करने वाले लोगों की क्षमता और खेती के प्रचलित तरीकों को देखकर भी निर्धारित की जा सकती है।

जोत की सीमा निर्धारित करने के बारे में योजना आयोग की सिफारिशें तीन प्रकार की हैं: (१) भविष्य में हर परिवार को अधिक से अधिक कितनी जमीन दी जाए; (२) ज़मींदार खुद काश्त के लिए किसानों से कितनी ज़मीन ले सकते हैं और (३) इस समय जिसके पास जितनी ज़मीन है उसमें से हरेक के पास अधिक से अधिक कितनी ज़मीन रहे।

भविष्य में हर परिवार को कितनी ज़मीन दी जाय

इस बारे म सीमा निश्चित करना अपेक्षाकृत आसान है। इन राज्यों में हर व्यक्ति के लिए नई ज़मीन की सीमा निश्चित कर दी है:

बम्बई	५० एकड़
मध्य भारत	५० एकड़
उत्तर प्रदेश	३० एकड़
पंजाब	विस्थापितों के लिय ५० स्टैंडर्ड एकड़, दूसरों के लिए ३० स्टैंडर्ड एकड़
हैदराबाद	परिवार की जोत का साढ़े चार गुना जिसकी आय ३,६०० रु० वार्षिक से अधिक न हो।
सौराष्ट्र	'क' श्रेणी के गिरासदार—आर्थिक दृष्टि से आवश्यक ज़मीन का तीन गुना
	'ख' ,, ,, आर्थिक दृष्टि से

आवश्यक जमीन का डेढ़ गुना

'ग' श्रेणी के गिरासदार हर काश्तकार की कुल जमीन का आधा

पश्चिम बंगाल ३३ एकड़

बिहार ३० एकड़

हिमाचल प्रदेश १० एकड़ या १२५ रु० के लगान की जमीन

अजमेर-मारवाड़ १२० एकड़ (प्रस्तावित)

खुद काश्त के लिए अधिक से अधिक जमीन

इस विषय में इन बातों पर विचार करना जरूरी होगा।

(१) क्या कोई ऐसी अवधि निश्चित करनी जरूरी है जिसके अन्दर यह अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए?

(२) क्या काश्तकार के पास कुछ जमीन छोड़ देनी चाहिए या सब की सब ली जा सकती है?

(३) क्या बड़े छोटे और दरम्यानी जमींदारों के लिए अलग-अलग नियम बनाए जाएँ या एक से?

(४) इस प्रकार बेदखल होनेवाले काश्तकारों को काश्त की अवधि या जमीन में कैसी फसल होती रही है ऐसे किसी आधार पर मुआवजा दिया जाए या नहीं?

इनमें से (१) और (२) के बारे में बम्बई और हैदराबाद की सरकारों ने अपने काश्तकारी कानूनों में व्यवस्था कर ली है। बम्बई में कम पानी चाहने वाली फसल उगाने वाली अधिक से अधिक ५० एकड़ जमीन और धान या बगायत की खेती लायक १२॥ एकड़ जमीन की सीमा नियत कर दी गई है। हैदराबाद में, एक व्यक्ति, कानून लागू होने के ५ वर्ष के अन्दर अधिक से अधिक ३ परिवारों की जोत अपने अधिकार में ले सकता है।

(३) के बारे में छोटे और बड़े जमींदारों के लिए अलग-अलग नियम रखना जरूरी है और जब कोई जमींदार खुद काश्त के लिए जमीन लेना चाहे तो उस पर उसकी आवश्यकता देख कर विचार किया जाए। बेदखल किसानों के मुआवजे का प्रश्न वास्तविक है और इसी दृष्टि से इसका निर्णय होना चाहिए।

वर्तमान जमीन के परिमाण की सीमा

यह प्रश्न बहुत व्यापक है और मुआवजे का प्रश्न भी इसी के साथ जुड़ा होने से योजना आयोग ने इस बारे में कोई स्पष्ट सिफारिश नहीं की है। यह अवश्य कहा है कि जिस जमीन का प्रबन्ध अच्छा है, उसे नहीं छेड़ना चाहिए। वर्तमान जोत का परिमाण केवल जम्मू-कश्मीर में निश्चित किया जा चुका है और वहाँ जमींदारों के पास २२॥ एकड़ से अधिक जितनी जमीन थी उसे काश्तकारों को बाँट दिया गया है।

एक आदिमजाति की कहानी—[पृष्ठ २१ का शेषांश]

इस प्रयोग को शुरू हुए अभी भी केवल २० महीने ही हुए हैं। यह कोई साधारण काम नहीं है। साधनों का अभाव होने के साथ-साथ निहित स्वार्थों की ओर से विरोध भी कुछ कम नहीं है क्योंकि उन्हें लोधाओं का सुधार होने से यह भय है कि फिर उन्हें उनका शोषण करने का अवसर न मिलेगा। किन्तु किसी भी अच्छे कार्य का क्षेत्र अपने आप तैयार होता रहता है। धीरे-धीरे विरोधियों का विरोध ही नहीं समाप्त होता जा रहा बल्कि उनसे समर्थन भी मिलने लगा है।

यह दावा करना कि शान्तिगढ़ के लोधाओं में पूर्ण रूप से मानसिक क्रान्ति हो गई है, बहुत कुछ अतिशयोक्ति ही होगी। विचारधारा को बदलना कोई साधारण काम नहीं है। योजना का उद्देश्य भीतर से उन्नति करना है, बाहर से थोपना नहीं। शान्तिगढ़ के लोधा लोग अपने स्वभाव के लिए बहुत बदनाम हो चुके हैं। उनके मानसिक धरातल तक पहुँचने में और नित्य प्रति के अनुभव के आधार पर उनके मनोवैज्ञानिक आधार और सामाजिक धारणाओं के परीक्षण के लिए काफी सावधानी बरती गई है। ऐसे प्रयोग की प्रगति में समय का लगना स्वाभाविक ही है।

शान्तिगढ़ में जो प्रयोग चल रहा है उसे एक आदर्श प्रयोग कहा जा सकता है, किन्तु वास्तव में यह विनाश की ओर जाने वाले मनुष्य को तथा उसकी बुद्धि को सुधारने और उसकी आर्थिक स्थिति को बिगड़ने से बचाने का एक साहसिक प्रयास है। यदि यह प्रयास पूर्ण रूप से सफल होता है तो इससे ऐसी मानव-सम्पत्ति का निर्माण होगा जो ह्रास को रोकेगी।

प्रगति के पथ पर

गेहूँ की उपज बढ़ाने और किस्म सुधारने का प्रयत्न

"गेहूँ सम्बन्धी गवेषणा का कार्य, केवल बीमारी न लगने वाले किस्म का गेहूँ पैदा करने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। गेहूँ को खेती के हर पहलू पर इस दृष्टि से विचार होना चाहिए कि उपज भी बढ़े और किस्म में भी सुधार हो।" ये शब्द भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के उपाध्यक्ष और केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव श्री रन्धावा ने गेहूँ गवेषणाकर्त्ता सम्मेलन के प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए कहे। सम्मेलन जून के दूसरे सप्ताह में शिमला में हुआ।

श्री रन्धावा ने आगे कहा कि विशेषज्ञों को अच्छी नस्ल के गेहूँ उपजाने, जमीन की जुताई करने, बीज डालने, खाद देने, जमीन में पोषक तत्व पहुँचाने, कांस को नष्ट करने आदि खेती के कामों और बढ़िया किस्म के गेहूँ के बीज को बढ़ाने और बाँटने तथा विविध नस्लों के गेहूँ की सूची तैयार करने की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

श्री रन्धावा ने पूसा (बिहार) के कृषि गवेषणा संस्थान में, बढ़िया नस्ल का गेहूँ पैदा करने की दिशा में, इस शताब्दी के पहले दस सालों में जो कार्य हुआ उसकी सराहना की। उन्होंने कहा कि अनेक कठिनाइयों के बावजूद हमारे गवेषणा संस्थानों ने वह काम किए जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। भारतीय कृषि गवेषणा संस्था की एन० पी० ४, एन० पी० ५२, एन० पी० १२५ और एन० पी० १६५, मध्यप्रदेश की ए० ओ० ६८, ए० ओ० ९० और ए० ११५, बंबई की बंसी २२४, जय, विजय और निफा डी-४ और पंजाब की ८-ए, ६-डी, सी ५१८ और सी ५९१, गेहूँ की बहुत अच्छी किस्में हैं। इनकी पैदावार स्थानीय नस्ल के गेहूँ से अधिक होती है पर बहुतों को कीड़े लग जाते हैं।

रतुए की रोकथाम के लिए अब तक जो काम हुए हैं, उनका उल्लेख करते हुए श्री रन्धावा ने कहा कि अकेली इसी बीमारी से देश को हर साल ३ से ६ करोड़ रुपए तक की हानि उठानी पड़ती है। अन्य देशों में तो एक ही किस्म का रतुआ होता है पर हमारे देश में तीन अलग-अलग किस्म का रतुआ होता है। गेहूँ की ऐसी किस्में अवश्य निकाली गई हैं जिनमें से कुछ पर पीले रतुए का असर नहीं होता और कुछ पर भूरे का। भारत सरकार ने राज्य सरकारों से मिलकर रतुए की रोकथाम की एक योजना शुरू की है। इसका सारा खर्च भारत सरकार उठा रही है। केन्द्रीय सरकार की ओर से शिमला, पूसा, इन्दौर और वेलिंगटन (नीलगिरि) में और राज्य सरकारों की ओर से बम्बई, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हैदराबाद, राजस्थान और पंजाब में रतुए की रोकथाम का काम हो रहा है। यह काम दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में भी जारी रहेगा।

गेहूँ गवेषणा कार्यकर्त्ता सम्मेलन की जनन तथा पौद विशेषज्ञ समिति ने गेहूँ की किस्म में सुधार करने के लिए अब तक की गई गवेषणा पर विचार किया। समिति ने मत प्रकट किया कि यद्यपि इस क्षेत्र में बहुत उपयोगी काम किया जा चुका है, फिर भी 'वलगेर' तथा 'दुरुम' गेहूँ की किस्म सुधारने के लिए अभी भी गवेषणा की जानी चाहिए।

बीज उत्पादन तथा वितरण समिति ने अच्छे बीज के उत्पादन तथा वितरण के प्रबन्ध की वर्तमान कमियों पर विचार किया। समिति की राय में दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में जो ५ हजार बीज उत्पादक फार्म खुलने वाले हैं, उनके खुल जाने पर ये सब कमियाँ बहुत कुछ पूरी हो जाएँगी। समिति ने विभिन्न क्षेत्रों में बीज की जाँच करने के लिए प्रयोगशालाएँ खोलने का भी सुझाव दिया।

कृषि शास्त्र समिति ने देश के विभिन्न भागों में गेहूँ की खेती करने के अलग-अलग प्रचलित तरीकों तथा उनके प्रचलन के कारणों के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी हासिल करने पर ज़ोर दिया। बीमारी समिति ने गेहूँ की बीमारियों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया और इनसे रक्षा के तरीकों की महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं।

ग्राम सेविकाओं का प्रशिक्षण

केन्द्रीय समाज कल्याण मंडल की कल्याण विस्तार योजनाओं के लिए १९५६-५७ में लगभग १,१२५ ग्राम सेविकाओं को कस्तूरबा गान्धी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट के २० प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रशिक्षित किया जाएगा। आजकल ट्रस्ट के १६ केन्द्र हैं। चार और केन्द्र उत्तर प्रदेश, पटियाला, राजस्थान और हैदराबाद (तेलंगाना) में खोले जाएँगे। एक वर्ष का यह पाठ्यक्रम जुलाई १९५६ से शुरू हो रहा है। सब राज्यों की महिलाएँ इसमें भाग लेंगी। शिक्षण काल में उन्हें गाँवों में नारी एवं शिशु कल्याण कार्य चलाना, गाँवों की औरतों के लिए पढ़ाई की कक्षाएँ, और बच्चों के लिए मनोरंजन केन्द्र और बालवाड़ियाँ खोलना सिखाया जाएगा। यह दूसरा पाठ्यक्रम है। पहले पाठ्यक्रम की ५०० ग्राम सेविकाओं ने हाल में अपना प्रशिक्षण समाप्त किया है और राज्य समाज कल्याण सलाहकार मंडलों ने उन्हें कल्याण योजना केन्द्रों में काम पर लगा दिया है।

वन लगाने का उद्देश्य—आत्मनिर्भरता

"दूसरी पचवर्षीय योजना की अवधि में वनों के विकास पर लगभग २४ करोड़ रुपए खर्च करने की व्यवस्था है। इस काम का अधिकांश, राज्य सरकारों को पूरा करना होगा और अधिकांश धन की व्यवस्था भी उन्हीं को करनी होगी।" ये शब्द केन्द्रीय वन विज्ञान मंडल की स्थायी समिति की बैठक में केन्द्रीय कृषि मंत्री डा० पंजाबराव देशमुख ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहे। मंडल की बैठक जून के दूसरे सप्ताह में श्रीनगर में हुई। केन्द्र, राज्यों की किस प्रकार सहायता करेगा, इस बात का उल्लेख करते हुए डा० देशमुख ने कहा कि राज्यों की योजनाओं के लिए केन्द्र अधिकतर कर्ज के रूप में सहायता देगा। अनुदान प्रायः ऐसी योजनाओं के लिए ही दिए जाएँगे जिनसे निकट भविष्य में कोई लाभ मिलने की आशा नहीं होगी। उन्होंने यह भी कहा कि पेड़ लगाने के कार्यक्रम का उद्देश्य है कि देश लकड़ी के मामले में आत्मनिर्भर हो जाए।

योजना आयोग इस बात का विशेष रूप से अध्ययन कर रहा है कि औद्योगिक विकास के लिए आधारभूत सामग्री क्या है? आयोग ने इस तरह की आठ चीजें बताई हैं। उनमें से एक लकड़ी भी है। कृषि मंत्री ने देश में लकड़ी की कमी की समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा कि दूसरी योजना में हम यह मान कर चले हैं कि देश की विकासशील अर्थ-व्यवस्था के मुकाबले लकड़ी की हमारे पास कमी है। हमें यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि कमी कितनी है। मेरा सुझाव है कि राज्यों को भी अपने-अपने क्षेत्र में कृषि उपज की तरह लकड़ी के उत्पादन और खपत के आंकड़े भी इकट्ठे करने चाहिएँ। लकड़ी के उद्योग के विकास के लिए डा० देशमुख ने सुझाव दिया कि हमें वनों में लट्ठे बनाने के पुराने तरीकों में सुधार करना चाहिए।

उन्होंने कहा कि हमारे देश में उतने ही क्षेत्र में और देशों की अपेक्षा कम लकड़ी पैदा होती है। इसके कई कारण हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के कारण लकड़ी की मांग बराबर बढ़ती जा रही है और इस कारण लकड़ी बहुत महंगी हो गई है। डर है कि कहीं लकड़ी इतनी महंगी न हो जाए कि लोग इसकी जगह और चीजें या कम से कम लकड़ी इस्तेमाल करने को बाध्य हो जाएँ। शायद हमें उपभोक्ताओं के हित का ख्याल रखकर और अधिक लकड़ी के आयात करने पर भी विचार करना पड़े। उन्होंने अंत में सुझाव दिया कि लकड़ी या वन्य उपज के इस्तेमाल के बारे में कोई नीति निर्धारित हो जानी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि कोई एक उद्योग या काम दूसरे महत्वपूर्ण उद्योग या काम को चौपट कर दे।

पनघट की ओर !

उत्कृष्ट प्रकाशन

महात्मा गान्धी

महात्मा गान्धी की कहानी—चित्रों में

यह चित्रमय कहानी काल क्रम अनुसार है और महात्मा गान्धी के अलौकिक जीवन के महत्वपूर्ण अध्यायों में बँटी हुई है। यह आशा की जाती है कि इस समय तक उनके जीवन तथा कार्य-कलाप के सम्बन्ध में जो प्रचुर सामग्री एकत्र हुई है यह प्रकाशन उसका उपयुक्त चित्रमय पूरक प्रमाणित होगा।

सादा जिल्द १०) रु०
सिल्क जिल्द १५) रु०

स्वाधीनता और उसके बाद—
जवाहरलाल नेहरू के भाषण

प्रधान मंत्री नेहरू के १९४६ से १९४९ तक विशेष अवसरों पर दिए गए ६० महत्वपूर्ण भाषण। स्वाधीनता, महात्मा गांधी, साम्प्रदायिकता, काश्मीर, हैदराबाद, शिक्षा, उद्योग, भारत की वैदेशिक नीति, भारत और राष्ट्र मण्डल, भारत और विश्व, आदि विषयों पर। सभी दृष्टियों से संग्रहणीय और पठनीय ग्रन्थ। रु० ५)

भारत दर्शन

(चित्रों में)

भारत की कहानी दिग्दर्शित करने वाले विविध चित्रों का अनमोल संग्रह है। देश के निवासी, पशु, वनस्पति, प्राकृतिक रचना, आदि का विहंगावलोकन। भारतीय जीवन विचारधारा, परिस्थिति, प्राकृतिक दृश्य इत्यादि, विभिन्न पहलुओं का स्थलानुरूप समावेश। रु० ७॥)

भारतीय कला का सिंहावलोकन

मोहिन्जोदरो के समय से लेकर भारत के प्राचीन मध्ययुगीन तथा आधुनिक कला के ३७ रंगीन और १०० एक रंगी चित्रों का संग्रह। रु० ६॥)

भारत की एकता का निर्माण

अगस्त १९४७ से दिसम्बर १९५० तक भारत के इतिहास के तेजस्वी काल में दिए गए सरदार वल्लभ भाई पटेल के २७ महत्त्वपूर्ण भाषण जो स्वतन्त्र भारत के निर्माण का यथार्थ प्रमाण हैं कई दुर्लभ चित्रों सहित। रु० ५)

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटरिएट, दिल्ली—८

Printed at the Mufid-i-'Am Press, Delhi, and Published on behalf of Community Projects Administration by the Publications Division Delhi-8.